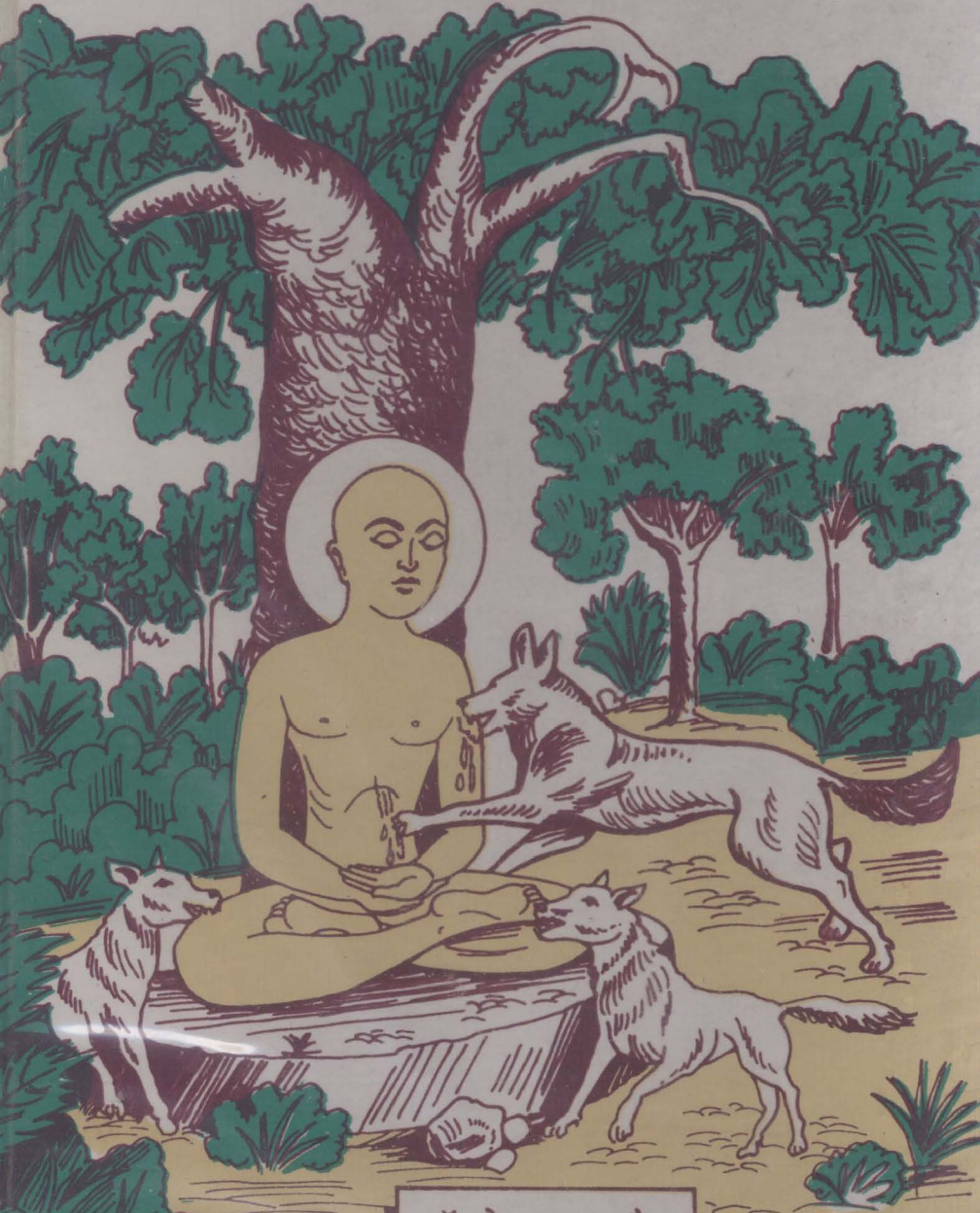


परीषह - जयी



डॉ. शेखरचन्द्र जैन

परीषह—जयी

परीषहजयी

(महान तपस्वी मुनियों की कथायें)

लेखक

डॉ. शेखरचन्द्र जैन

प्रकाशक

श्री कुन्धुसागर ग्राफिक्स सेन्टर,

अहमदाबाद

परीषहजयी

(महान तपस्वी मुनियों की कथायें)

लेखक

डॉ. शेखरचन्द्र जैन

प्रकाशक — वितरक

श्री कुन्धुसागर ग्राफिक्स सेन्टर,
६, उमियादेवी सोसायटी नं. २, अमराईवाड़ी
अहमदाबाद—३८००२६

सर्वाधिकार लेखक के सुरक्षित

लेसर टाइप सेटर्स

श्री कुन्धुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
अहमदाबाद

मुद्रक :-

मारूति प्रिन्टर्स, अहमदाबाद

मूल्य २५ रूपये मात्र

आशीर्वाद

डॉ. शेखरचन्द्र जैन मूर्धन्य विद्वान एवं उच्च कोटि के लेखक हैं। उन्होंने जैन साहित्य की प्रायः सभी विद्याओं पर कलम चलाई है। उनके प्रवचनों, समीक्षा, ध्यान की पुस्तकें लोकप्रिय हुई हैं। 'मृत्युजंघी केवलीराम' उपन्यास द्वारा पद्म पुराण को सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रसंशनीय कार्य किया है। महान जैन सतियों और उपसर्गविजिता मुनियों की कथा नई एवं सरल शैली में प्रस्तुत कर उन्होंने नई पीढ़ी को धर्म के प्रति आस्थावान बनाने का उत्तम कार्य किया है।

'तीर्थकरवाणी' के माध्यम से वे धर्म-समाज की सेवा कर ही रहे हैं।

यह 'परीषद्जयी' कृति अवश्य लोगों को सच्चे मुनियों के प्रति श्रद्धावान बनायेगी एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्था-विश्वास उत्पन्न करेगी।

आज एकान्तवादियों द्वारा मुनियों को द्रव्यलिंगी कहकर जो भर्त्सना की जा रही है, उनके लिए मुनियों का दृढ़ चरित्र-आलेखन योग्य प्रत्युत्तर है।

मैं इस कृति पर डॉ. जैन को आशीर्वाद देता हूँ। वे सत्साहित्य लेखन में निरंतर प्रगति करते रहें, यही शुभ कामना व्यक्त करता हूँ।

गणधराचार्य कुन्धुसागर



लेखक परिचय

डॉ. शेखरचन्द्र जैन

एम. ए., पी-एच.डी., एल.एल.बी., साहित्यरत्न
शिक्षण व कार्यक्षेत्र

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग

श्रीमती सद्गुणा सी. यु. आर्ट्स कोलेज फोर
गर्ल्स, अहमदाबाद

साहित्यिक रुचि :- काव्य, कहानी, ऐकांकी, एवं
समीक्षा लेखन ।

प्रकाशित साहित्य :- “राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला ।”

‘घर वाला’, ‘कठपुतली का शोर’ (काव्य)

‘नए गीत-नए स्वर’, ‘चेतना’

गुजरात के प्रतिनिधि हिन्दी कवि } अन्य कवियों के साथ

‘टूटते संकल्प’ (कहानी संग्रह)

‘इकाइयाँ-परछाइयाँ’ कहानी संग्रह (सह-संपादक)

कापड़िया अभिनन्दन ग्रन्थ (प्रधान-संपादक)

आर्यिका ज्ञानमती माताजी अभिवंदन ग्रन्थ (सह-संपादक)

गणधराचार्य कुन्थुसागरजी अभिवंदन ग्रन्थ (प्रधान-संपादक)

The Directory of Gujarat (Co-editor)

The Jain (Souvenir) Co-Editor

आध्यात्मिक प्रकाशित साहित्य

मुक्ति का आनन्द (हिन्दी-गुजराती)

जैनाराधना की वैज्ञानिकता (गुजराती)

जैनधर्म : सिद्धान्त और आराधना (हिन्दी)

मृत्युञ्जयी केवलीराम (उपान्यास)

तन साधो : मन बांधो (ध्यान संबंधी) (हिन्दी-गुजराती)

मृत्यु महोत्सव (हिन्दी)

ज्योतिर्धरा (कहानी संग्रह) (हिन्दी- गुजराती)

परीषद्जयी (कहानी संग्रह) (हिन्दी)

प्रधान संपादक :- “तीर्थकरवाणी ” (मासिक पत्र)



आर्थिक सहयोगी

श्री जितेन्द्रकुमार रमेशचन्द्र कोटडिया

धर्मवत्सल, संघपति श्री रमेशचन्द्र कोटडिया एवं संस्कार प्रिय माता शांतादेवी के पुत्र श्री जितेन्द्र कुमार कोटडिया अपने माता-पिता के धर्म संस्कारों से ओत-प्रोत हैं। बी.कोम. बम्बई में करने के पश्चात् भाग्यआजमाने किशोरावस्था में ही अमरीका पहुँचे। श्रम और भाग्य के महयोग से एक प्रतिष्ठित व्यापारी के रूप में

स्थाई हुए। १५ वर्षों से अमरीका के फ्लोरिडा राज्य के ओरलेन्डो शहर में जो, आप्टेक सेन्टर के कारण विश्व के आकर्षण का केन्द्र है - वहीं स्थित हैं।

फर्म :- जे एन्ड पी. ऐन्टर प्राइज के नाम से आप होलसेल गिफ्ट आइटम के वितरक है।

आपके चार भाइयों में श्रीपंकज, प्रफुल्ल एवं सुनील आपकी तरह बंबई में रहकर हीरे जवाहिरात के व्यवसाय में कार्यरत हैं।

पत्नी सोमवती जी धर्मनिष्ठ-संस्कारी महिला हैं जो पति के व्यवसाय में भी सहयोग देती हैं। आपके पुत्र रूपेश व पुत्री पूना छोटीसी उम्रमें पश्चिम सभ्यता में पलने पर भी जैन संस्कारों से परिपूर्ण हैं।

श्री रमेशचन्द्रजी (पिता) के धनका उपयोग धर्म कार्यों में सदैव किया है। भारत की अनेक संस्थाओं में दान दिया है। इस वर्ष आपने पू. गणधराचार्य कुन्धुसागरजी के संघ को अहमदाबाद में गिरनार जी की यात्रा लगभग दो माह साथ रहकर पूर्ण व्यवस्था से करवाने का पुण्य लाभ लिया।

युवा हंसमुख-धर्म प्रेमी जितेन्द्रकुमार ने सत्साहित्य के प्रकाशन को प्रोत्साहित करनेके लिए यह योगदान दिया है।

आप अमरीका में भी धर्म-समाज के लिए तन-मन-धन से जुटे है। इस छोटी उम्र में भी जैन सेन्टर के अध्यक्ष रहे है। जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में आपकी सेवायें निरन्तर प्राप्त होती रहती है।

Contact:- J. & P. Enterprises

P.O.Box 690246 ,ORLANDO-FL.U.S.A.

परीषहजयी

हृदयोद्गार

किसी भी धर्म के विकास, प्रचार-प्रसार में उसके स्थापक, प्रवर्तक एवं अनुयायियों का तप-तेज-उत्सर्ग का योगदान प्रमुख रूप से होता है। इनके ये बलिदान ही युग युगान्तर तक धर्म की जगमगाहट बने रहते हैं। ऐसे ही बलिदान के आत्मोत्सर्ग के अनेक उदाहरण शास्त्रों में दृष्टव्य हैं।

हम जानते हैं कि जैन दर्शन-साहित्य चार अनुयोगों में विभाजित है। इनमें सर्वप्रथम प्रथमानुयोग या कथानुयोग है। विविध कथानकों के उदाहरणों द्वारा धर्म-नीति के सिद्धान्तों को पुष्ट करके धर्म के प्रति आस्थावान बनाया है। धर्म के गहन सिद्धान्त भी कथाओं के माध्यम से सरल एवं लोकमान्य हो जाते हैं।

साहित्य-विद्या में भी कथासाहित्य का विशेष स्थान रहा है। इसकी जिज्ञासावृत्ति "फिर क्या हुआ" की भावना, कथोपकथन की सजीवता, घटनाओं के परिवर्तित रूप-पाठक व श्रवणकर्ता को आनंद प्रदान करते रहे हैं। मानसिक थकान महसूस करनेवाला भी किस्सों को सुनकर तनावमुक्ति का अनुभव करता है। यही कारण है कि कथा साहित्य लोकप्रिय हुआ।

धर्मप्रचारकों, साधुसंतों एवं विद्वानों ने इसी कथा-माध्यम से धर्म की गूढ़ बातों को सरलता से लोगों को समझाया।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी कथासाहित्य उतना ही लोकप्रिय है। हाँ उसमें कल्पना से अधिक वास्तविक जीवन के यथार्थ को विशेष आलेखित किया जाने लगा है।

हमें पौराणिक-ऐतिहासिक एवं बहुश्रुत आधार पर अनेक कथायें पढ़ने, सुनने को मिलती हैं। मुझे लगता है कि वर्तमान में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और चरित्र-निर्माण में उन कथाओं का विशेष महत्त्व रहा है—और रहेगा।

जैन साधु अनादि युग से परीषहजयी रहे हैं। संसार के समस्त भोग-विलास को तृणवत त्यागकर आत्मकल्याण में लीन ये सदैव दीप-स्तंभ बने रहे हैं। दर्शन-ज्ञान को पूर्ण रूपेण चारित्र्य में उतारने वाले ये कथनी-करनी में सदैव अद्वैतवादी रहे। व्रतों के महाव्रती ये साधु देह के अनेक कष्ट कर्मोदय

मानकर समताभाव से सहन करते रहे ... पर कभी शरीर या मन से न तो किसी का हिंसक प्रतिकार किया और न ही उपसर्ग कर्ता के प्रति द्वेष भाव ही माना । इसे वे अपने ही पूर्व अशुभ कर्मों का फल मानकर सहन करते रहे । इन महापुरुषों ने मरण का वरण किया ... पर देहाशक्ति के कारण डिगे नहीं ।

यद्यपि इस कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी का उल्लेख शास्त्रों में हुआ है । कहानी के रूपमें भी प्रस्तुति हुई है । पर मैंने उसी कथा को घटना—पात्र को यथावत स्वीकार करते हुए नवीन शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । उनके तप—त्याग की वैज्ञानिकता प्रस्तुत की है । घटनाओं को साहित्यिकता प्रदान की है । पात्रों की मनःस्थिति को मनोविज्ञान की कसौटी पर कसा है । जैसा कि हर कहानी का उद्देश्य—दृढ़ संयम व परीषह सहन करना है —उसी भाव की पुष्टि की है ।

कितने महान थे मुनि सुकमाल या सुकोशल जिनका सियारनी या व्याघ्री भक्षण करती रही पर उससे बेखबर देहातीत होकर आत्मा में ही खो गये ... मुक्त हो गये । गजकुमार की सहनशक्ति ही मुक्ति का कारण बनी , चिलातपुत्र जैसा दुष्ट , विद्युतद्वार जैसे खिलाड़ी भी मुक्तिवधू के कंथ बने ... दुष्टों से हारे नहीं । राज्य के समस्त वैभव छोड़कर वारिषेण—जम्बूस्वामी परीषह सहते—सहते आत्मार्थी बनकर मुक्त बने । ब्रह्मचर्य के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले सुदर्शन, जैनधर्म के लिए प्राण अर्पण करने वाले भट्ट अकलंक क्या भुलाये जा सकते हैं ? अनेक ग्रन्थों के रचयिता , रत्नकरण्डश्रावकाचार के प्रणेता की दृढ़ता और धर्मश्रद्धा के समक्ष अन्य विरोधियों का चमत्कार ही श्रद्धा को दृढ़ बना सका था । इन महान आत्माओं के समक्ष जंगली पशु, निर्दयी अत्याचारी भी परास्त हुए । इनके चरित्र यही संदेश देते हैं कि धर्म के लिए मर तो सकते हैं —अधर्म के लिए जी नहीं सकते । मनुष्य को दृढ़ता से कभी भी नहीं डिगना चाहिए ।

प्रेरणास्रोत— इस कथा संग्रह के प्रेरणास्रोत हैं पू. उपा. ज्ञानसागरजी महाराज । आपकी प्रेरणा जो सन १९९१ में गयाजी की विद्वत संगोष्ठी में प्राप्त हुई थी । जिससे मैं मृत्युंजयी केवलीराम एवं ज्योतिर्धरा उपन्यास व काहनी संग्रह लिख सका । (जिनका प्रकाशन हो चुका है । प्रथमावृत्ति अनुपलब्ध हैं । गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो चुका है ।) इन्हीं मुनिश्री की प्रेरणा से इन परीषहजयी महान आत्माओं के जीवन के आलोक को उजागर करने का यह प्रयत्न कर सका । पू. महाराजजी चाहते हैं कि जैन पुराणों की कथायें नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हों । जिससे नई पीढ़ी प्रेरणा ले सके । इस कार्य के लिए उनका मुझे

निरन्तर आशीर्वाद मिलता रहा है । यही मेरा सौभाग्य है ।

नामकरण :- इस संग्रह का नाम 'परीषहजयी' रखने का प्रयोजन इतना ही है कि सभी नौ (पूर्णांक) काहानियों उन मुनियों के संदर्भ में है जिनसे पूरा जैन समाज परिचित है । जिनकी दृढ़ता ,सहनशक्ति हरयुगमें प्रेरणा देती रही है । ऐसे चरित्रों का अनुशरण हमें कषाय से मुक्ति दिलाने में , दृढ़ सहनशक्ति प्राप्त करने में एवं आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ने में तो मदद करता ही है ,पर इस क्षमाशक्ति से पारिवारिक ,सामाजिक पारस्परिक वैमनस्य दूर होता है । बड़े से बड़े संघर्ष टल जाते हैं ,चाहे वे व्यक्तिगत हों ,राष्ट्रीय या आन्तराष्ट्रीय हों । क्षमा से बड़ा धर्म भी क्या हो सकता है ? परीषह सहन करने में क्षमा ही सबसे बड़ा गुण है ।

आभार :-कहानी संग्रह की पाण्डुलिपी २-३ वर्षों से पत्रों में ही परीषह सहन कर रही थी ।लेखक लिख तो सकता है पर प्रकाशन तो अर्थ पर ही निर्भर होता है । शायद निमित्त नहीं जुड़ पा रहा था । वह निमित्त भी जुटा । पू. गणधाराचार्य कुन्धुसागर जी महाराज का १९९६ में अहमदाबाद ,खोखरा मंदिर में चातुर्मास सम्पन्न हुआ । चातुर्मास की पूर्णता के पश्चात उनकी गिरनार यात्रा की सहर्ष संघपति बनकर श्री रमेशचन्द्र कोटड़िया एवं परिवारने जिम्मेदारी का स्वीकार किया ।

श्री रमेशचंदजी एवं उनके पुत्र सभी मेरे स्नेही मित्र हैं । उनसे परिचय अमरीका एवं बंबई में हुआ था । वे धर्मप्रिय वाचक हैं । तीर्थकरवाणी के उपसंरक्षक थे ही । इसी दौरान उनकी जिज्ञासा सत्साहित्य प्रकाशन की थी । मेरे पास पाण्डुलिपी थी । उन्होंने तुरंत स्वीकृति देते हुए प्रकाशन खर्च की आंशिक स्वीकृति देकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया । इसी के परिणाम स्वरूप यह पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत कर सका । इससे उनका व परिवार का आभारी हूँ ।

पू. उपा. ज्ञानसागरजी का कृतज्ञ हूँ कि वे मेरे प्रेरणास्रोत रहे । पू. गणधाराचार्य कुन्धुसागरजी का ऋणी हूँ कि जिन्होंने अपना मंगल आशीर्वाद दिया ।

सबसे अधिक आभारी आप सबका हूँ जो इस साहित्य को पढ़कर धर्म के प्रति दृढ़ बनेंगे और मुझे प्रोत्साहित करेंगे ।

अल्पसमय में पुस्तक प्रकाशित होने के निमित्त कॉम्प्यूटर ऑपरेटर, डिजाइनर,प्रिन्टर, बाईन्डर सभी धन्यवाद के पात्र हैं ।

डॉ. शेखरचन्द्र जैन

अनुक्रमणिका

क्रम	कथा	पेज नं.
१.	सुकुमाल मुनि	१०
२.	सुकोशल मुनि	२७
३.	भट्ट अकलंक देव	४२
४.	चिलात पुत्र मुनि की कथा	५७
५.	विद्युच्चर मुनि	७१
६.	समन्त भद्राचार्य	८३
७.	वारिषेण मुनि	९७
८.	जम्बूस्वामी	१११
९.	सुदर्शन सागर	१३२
१०.	गजकुमार	१५०



सुकुमाल मुनि

कौशंबी के राज पुरोहित के यहाँ आज शोक के बादल छा गये। चारों ओर रुदन के स्वर फूट पड़े। काश्यपी का विलखना, हृदयविदारक चीखें पत्थर को भी पिघला रही थीं। परिवार के लोग, नगर के लोग, स्वयं कौशंबी नरेश उसे सान्त्वना दे रहे थे। कल तक जो भले चंगे राज्य के पुरोहित का पद भार सम्हाल रहे थे— एकाएक हृदय रोग का शिकार बन गये। काल के गाल में समा गये। सोमशर्मा का इस तरह एकाएक काल-कवलित होना सभी के ऊपर मानों वज्राघात ही था। काश्यपी आज अनाथ हो गई थी। दोनों पुत्रों को छाती से लगाये उन्हें चुप कराने के प्रयत्न में स्वयं आँसू बहा रही थी। उसके दुःख का कारण पति वियोग तो था ही - साथ ही उसे चिन्ता थी लाड़-प्यार के कारण उसके पुत्र अनपढ़-गँवार ही रह गये हैं। अब उसके पुत्रों में से कोई राजपुरोहित नहीं हो सकेगा।

बचपन से ही इन दोनों पुत्र अग्निभूति और वायुभूति की पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान ही नहीं था। राजकाज और यजमानों में व्यस्त पुरोहितजी को समय ही नहीं थी कि पुत्रों पर भी ध्यान दें। माता का लाड़ कभी बेटों की उच्छृंखलता को देख ही न पाया। पिता का राजपुरोहित पद और धन, माता का लाड़ पुत्रों की प्रगति में बाधा बने।

यद्यपि महाराज अतिबल चाहते थे कि सोमशर्मा के पुत्र ही उस पद पर प्रतिष्ठित हों— पर पुत्रों की मूर्खता अज्ञानता के कारण वे उन्हें राजपुरोहित के उच्च पद पर कैसे बैठाते ? आखिर मजबूर होकर उस पद पर अन्य व्यक्ति को राजपुरोहित बना दिया गया। काश्यपी और पुत्रों के लिये अर्थ व्यवस्था कर दी गई।

माँ की विह्वलदशा और मामा सूर्य मित्र के समझाने पर दोनों भाइयों को वास्तविकता का परिचय हुआ। वे अपनी मूर्खता पर पछताने लगे। पिता के नाम स्वयं को कलंक समझने लगे। उन्हें पछतावा भी हो रह था। पश्चाताप की इस भावना ने ही उनके मन को पवित्र बनाया। सत्य के दर्शन कराये। सच भी है यदि व्यक्ति अपनी भूलों पर पश्चाताप करे तो भूलें स्वयं क्षमा बन जाती हैं। पश्चाताप मनुष्य को सत्पथ पर लौटा लाता है।

स्वयं का पश्चाताप, माँ का दुःख एवं मामा एवं अन्य प्रियजनों के मार्गदर्शन की प्राप्ति से दोनों भाइयों ने दृढ़ निश्चय किया कि वे विद्याध्ययन करेंगे और पिता की प्रतिष्ठा को पुनः अर्जित करेंगे। दृढ़ निश्चय ही सफलता की कुंजी होती है। यह कुंजी इन भाइयों को मिल गई थी। मामा सूर्यमित्र ने इनकी अध्ययन की प्रबल इच्छा को जानकर अपने साथ अपने घर राजगृह ले गये। उनके पढ़ने की व्यवस्था की। दोनों भाइयों में पढ़ने की लगन थी— पढ़ाई का निमित्त मिल गया। दोनों ने पूर्ण चित्त से पढ़ाई की और देखते ही देखते विद्याध्ययन में पारंगत हो गये। वेद, पुराण, शास्त्र, मंत्र—ज्योतिष एवं क्रियाकांड के गुणों को सीख गये। उनका पांडित्य निखर उठा। अभ्यास पूर्ण करके गुरुओं का आशीर्वाद, मामा की व्यावहारिक शिक्षा लेकर वे अपने घर वापिस लौटे। माँ ने उन्हें देखा - मानों आँचल में दूध उत्तर आया। आँखें छलछला आईं। उसने बेटों को छाती से लगा लिया। बेटों ने भी माँ के वक्षस्थल से लिपटकर वात्सल्य की सरिता में अवगाहन किया।

आज अग्निभूति और वायुभूति के चहेरों पर विद्वता की झलक थी। ब्रह्मचर्य का तेज था, ज्ञान की गरिमा थी। उनके ज्ञान—साधना की चर्चा पूरे राज्य में सुवासित पुष्प की गंध सी प्रसारित हो गई। दोनों भाई महाराज के दर्शनों को पहुँचे। उनके ज्ञान की बातें यद्यपि महाराज के कानों तक पहुँच चुकी थीं.. पर उन्हें अपने सामने पाकर महाराज अति प्रसन्न हुए। दोनों भाइयों को गले लगाया। उन्हें उपाहार प्रदान किए, योग्य आसन दिया। दोनों पुत्रों से बातचीत करते समय उन्होंने भाँप लिया कि दोनों सचमुच विद्वान हो गये हैं। महाराज ने पुत्रों को योग्य जानकर उन्हें राजपुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित किया।

अग्निभूति और वायुभूति ने यह समाचार घर लौटकर अपनी माता को दिया। माँ का हृदय विह्वल हो उठा। दोनों बेटों को छाती से लगा लिया। उसके हृदय का वात्सल्य स्रोत और नयन का जल बालकों को प्लावित कर रहा था। आज माँ और बेटों की साधना सफल हो गई थी। लग रहा था स्वर्ग से सोमशर्मा की आत्मा भी इन्हें आशीर्वाद दे रही थी।



कौशांबी के राजोद्यान में महामुनि अवधिज्ञानी मुनि सुधर्मजी रुके हुए थे। उनके उपदेशामृत का नगरजन पान कर रहे थे। वे कह रहे थे -“तत्त्व में

श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। तत्त्व मूलतः सात हैं। इनमें पूरी सृष्टि का तत्त्व और सत्त्व समाहित है। इनके अलावा अन्य तथ्यों को मानना स्वयं को अंधकार में ले जाना-स्वयं को धोखा देना है। ये सात तत्त्व हैं जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।” महाराजश्री ने लगभग एक घंटे तक तत्त्वों की विवेचना की। श्रद्धालुओं ने श्रद्धा से श्रवण किया। प्रवचन पूर्ण होने पर भक्ति से उनको वंदन कर लोग जाने लगे। आज श्रोताओं में अग्निभूति भी बैठे थे। प्रवचन के पश्चात उन्होंने महाराज श्री के चरणों में नमोस्तु कहा। उनके चहरे की रेखायें स्पष्ट बता रही थीं कि वे किसी गहरी चिंता में डूबे हैं। इसी चिन्ता के समाधान हेतु तो वे यहाँ आये थे। वे जानते थे कि महाराजश्री अवधिज्ञानी हैं। अग्निभूति ने विनय पूर्वक बैठते हुए महाराज से हृदय की व्यथा कही-“महाराज कल संध्याकाल जब मैं सूर्य को अर्घ्य समर्पित कर रहा था उससमय मेरी उँगली से रत्नजड़ित राजमुद्रिका तालाब में गिर गई। बहुत खोज कराई पर नहीं मिली। वह राज्य मुद्रा है। उसका खो जाना मेरे लिए संकट का सूचक है।” कहते-कहते अग्निभूति महाराजश्री के चहरे पर टकटकी लगाकर देखने लगा। उसे विश्वास था कि महाराज अवश्य बतायेंगे कि मुद्रिका कहाँ है और कब मिलेगी।

“पुरोहितजी! आपकी मुद्रिका आप जब अर्घ्य दे रहे थे उससमय आपकी उँगली से निकलकर एक खिले हुए कमल में गिर गई थी। सूर्यास्त होते-होते कमल पत्र बंद हो गये। और मुद्रिका उसी में बंद हो गई। प्रातःकाल आपको मिल जायेगी।” अपनी कोमल वाणी से महाराज ने बताया।

महाराजश्री को वंदनकर अग्निभूति उसी स्थान पर गया जहाँ कल संध्यावंदन कर रहा था। जाकर देखा तो कमल दल पर पत्तों के बीच मुद्रिका जगमगा रही है। मुद्रिका को पुनः प्राप्त कर उसका हृदय भी जगमगा उठा।

अग्निभूति को आश्चर्य हुआ कि महाराजश्री ने यह कैसे जान लिया। दूसरे दिन अग्निभूति महाराजश्री के पास पहुँचा वंदना की और विनयपूर्वक बोला “महाराज आपका कथन शत-प्रतिशत सत्य निकला। मेरी मुद्रिका मुझे प्राप्त हो गई। कृपया मुझे भी यह विद्या सिखाने की कृपा करें।”

“पुरोहितजी जैनधर्म की विद्या में किसी चमत्कार या स्वार्थहेतु नहीं सीखी जाती। इनका प्रयोग तो तभी किया जाता है जब कोई व्यक्ति राष्ट्र या समाज गहरे

संकट में हो। और फिर इसे सीखने के लिये त्याग-तप एवं जिनेश्वरी दीक्षा लेना आवश्यक है।”

यद्यपि उस समय यह सद्यः संभव नहीं हुआ पर उसके मन में मुनिराजों के ज्ञान, तप-चारित्र्य के प्रति गहरी श्रद्धा ने जन्म लिया। वह जैनत्व का विश्वासी बन गया।

अग्निभूति को वह सुयोग भी मिल गया। उनके मामा सूर्यमित्र जो जैनश्वरी दीक्षा ले चुके थे, वे विहार करते-करते कौशांबीनगरी में पधारे। अग्निभूतिने उनकी पूजा-वंदना की, भक्तिपूर्वक उन्हें आहार कराया और धर्मोपदेश श्रवण किया। जैनधर्म में उसकी श्रद्धा और भी दृढ़ हो गई।

“भैया वायुभूति! यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे नगर और द्वार पर जैनमुनि पधारे हैं। हमारा नगर और घर पवित्र हो गया। आप भी उन्हें आहार देकर पुण्यार्जन करें।” अग्निभूति ने अपने भाई को प्रेरित करना चाहा।

“बेवकूफ ! मैं तुझ जैसा नहीं। अपने परंपरागत वैदिक धर्म को छोड़ तु इन नंगों के धर्म में फँस गया है। अरे! ये नंगे तो बड़े बदमाश होते हैं। गंदे होते हैं।” इसप्रकार के अनेक कटुवचनों से उसने मुनि-निंदा की और अपना क्रोध, क्षोभ एवं विरोध व्यक्त किया।

“भैया ! तुम क्यों ऐसे दुर्वचनों से दुर्गति का बंध कर रहे हो। अरे ये तो पावन जंगम तीर्थ हैं।” अग्निभूत ने पुनः समझाने का प्रयास किया।

इससे वायुभूति का क्रोध भड़क उठा उसने भलाबुरा कहने के साथ अग्निभूति पर प्रहार भी किये।

अग्निभूति ने इसे दुष्कर्म का प्रभाव मानकर सहन कर लिया। वह प्रतिदिन अधिकांश समय मुनिराज सूर्यमित्र के साथ बिताने लगा। उसका मन उत्तरोत्तर संसार से विरक्त होने लगा। और एकदिन उसने महाराज से निवेदन किया “महाराज ! मैं इस स्वार्थी, मरणधर्मा संसार को देख चुका हूँ। मैं इससे मुक्त होकर जिनेश्वरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ।”

“वत्स! यह योग्य निर्णय है।” मुनिजी ने उसे दीक्षित कर दिया। अब अग्निभूति राजपुरोहित नहीं थे। अपितु निग्रंथ मुनि थे।

अग्निभूति की पत्नी सोमदत्ता ने जब यह समाचार सुना तो अपना सिर पीट लिया। पर इसका कारण उसने अपने देवर वायुभूति को माना।

“देवरजी! यदि तुमने मुनिराज की वंदना की होती तो तुम्हारे भाई इसतरह घर छोड़कर नहीं जाते।” सोमदत्ता ने कुछ क्रोध उपेक्षा से कहा।

“इसमें मैं क्या करूँ? वह मूर्ख था अपने धर्म को छोड़ नंगों के धर्म में घुस गया।” तिरस्कार से वायुभूति ने उत्तर दिया।

“चलो देवरजी! हम लोग चलकर उन्हें समझाकर वापिस लौटा लावें।” आग्रह से उसने वायुभूति का हाथ पकड़ लिया।

“छोड़ मेरा हाथ। उसने घर छोड़ा है। मैं क्यों समझाने जाऊँ। अच्छा है कि पर धर्म में जाने वाला मर जाये।” कहते-कहते वायुभूति ने भाभी को लात मारकर अलग कर दिया।

देवर की लात खाकर सोमदत्ता का क्रोध भड़क उठा। उसने मन ही मन संकल्प किया कि इस लात मारने का बदला वह अवश्य लेगी। चाहे मुझे कितने ही भव क्यों ने लेने पड़ें। सोमदत्ता इसी आर्त-रौद्र ध्यान में निरंतर बदले की भावना से जलने लगी। उसे अब पति के जाने से अधिक पाद-प्रहार की पीड़ा थी। बदला लेने की तीव्रतम लालसा दृढ़ बैरभाव में जमती जा रही थी। उसने बैरभाव से ग्रसित होकर यह निश्चय किया कि -“मैं जब तक पाद प्रहारी देवर के हृदय का मांस भक्षण नहीं करूँगी तब तक चैन से नहीं बैठूँगी। चाहे मुझे कई जन्म ही क्यों न लेने पड़ें।”

यद्यपि वायुभूति को मुनिनिंदा एवं अपने कुकृत्य की सजा मानों इसी भव में मिल रही थी। अभी कुछ दिन भी नहीं बीते थे कि उसका संपूर्ण शरीर कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया। उसकी इस भयानक रोग से मृत्यु हो गई। इसकी प्रसन्नता भाभी को हुई।



महाराज मैं लुट गया। बरबाद हो गया। “नागशर्मा ने रोते-बिलखते हुए चम्पापुरी के महाराज के सामने चिल्लाते हुए कहा।”

“क्या हुआ? विप्रदेव! शांत होइए।” महाराज ने धीरज बँधाते हुए कहा। “महाराज! यहाँ एक नंगे बाबा घूम रहे हैं। वे बड़े धूर्त लगते हैं। उन्होंने किसी मोहिनी विद्या से मेरी पुत्री नागश्री को बरगला लिया है ... वे कहते हैं- यह मेरी पुत्री है” पुनः रोते हुए ब्राह्मण ने घटित घटना सुनाई। पुनः बोला “ मुझे न्याय

चाहिए। मेरी पुत्री मुझे लौटवाइए.. ऐसे धूर्तों को सजा दीजिए।”

“ऐसा ही होगा।” कहकर महाराज ने ब्राह्मण को सांत्वना दी।

मंत्री से कहकर अपने सेवकों के साथ ब्राह्मण को लेकर उस उद्यान में पहुँचे जहाँ जैनमुनि श्री सूर्यमित्र अपने संघस्थमुनि अग्निभूति के साथ ठहरे थे। उन्हें देखकर राजा ने उन्हें नवधि भक्ति पूर्वक वंदन कर नमोस्तु कह कर उनकी कुशल क्षेम पूछकर ओर बैठ गये।

“यही है वह साधू - महाराज! इसी ने मेरी पुत्री को बहकाया है।” नागशर्मा ने महाराजश्री की वंदना करने के विवेक को ही चूक गया। और क्रोध से पुनः अपना दुखड़ा रोने लगा।

ब्राह्मण के इस व्यवहार को देख राजा को क्रोध आया। पर, मुनिश्री सूर्यमित्र ने उन्हें रोका। और, नागशर्मा को आशीर्वाद देकर बैठने का इशारा किया।

“महाराजश्री यह विप्र कह रहा है कि नागश्री आपकी पुत्री है! मेरी समझ में यह बात नहीं आई।”

“राजन! यह सत्य है” गंभीर स्वर में मुनि जी बोले।

“नहीं महाराज! यह झूठ है। मेरी लड़की मुझे दिलवाइए।” ब्राह्मण बोला।

“महाराज मुझे समझ में नहीं आता क्या सत्य है। इसका रहस्य क्या है”

“देखिये राजन यह सत्य आप लड़की से ही जान लें। यदि ये उसके पिता होते तो उसे पढ़ाते योग्य बनाते। मैंने इस लड़की को शास्त्राभ्यास कराया है। इसे सत्य और तथ्य से अवगत कराया है। राजन पिता वह है जो संतान को विद्या का संस्कार दे। विद्याधन से समृद्ध करे। मैंने ऐसा किया है। उसे व्रताराधना कराके उसे नरक के दुःखों से छुड़ाया है।”

“मैं कुछ समझा नहीं महाराज।” राजाने हाथ जोड़कर कहा।

“महाराज यह पुत्री नागश्री मेरे साथी मुनि अग्निभूति के पूर्वभव का भाई वायुभूत है। मुनिनिंदा के कारण वह आर्त रौद्र ध्यान के कारण कोढ़ के रोग से पीड़ित होकर मरण की शरण गया। कुकर्म के कारण इसने गधा, जंगली सुअर, कुत्ता एवं चाण्डाल के घर दुर्गन्धा पुत्री के रूप में जन्मी। पिताने दुर्गन्ध के कारण इसे त्याग दिया। यह मरणासन्न थी आयु अत्यल्प थी अतः उस समय इसे ज्ञान

एवं व्रत दिलाये थे । इसके शुभ भाव बनने से यह इस जन्म में इस विप्रवर्य की कन्या हुई है । इसके धर्म के संस्कार जागृत हुए । इसने उन्हीं के वशीभूत होकर इस जन्म में हम से पंच महाव्रत धारण किए । बस इसी से ये विप्रवर्य हमसे नाराज हैं । आप अब नागश्री को बुलाकर परीक्षण कर लें ।” मुनि सूर्य मित्रने अवधिज्ञान से पूर्व भव की कथा सुनादी ।

“बेटी नागश्री क्या यह सत्य है ” राजा ने नागश्री से पूछा ।

“हाँ, महाराज ! ” नागश्री को जातिस्मरण हो आया और उसने जन्मान्तर में पढ़ी समस्त विद्या को कह सुनाया । इस चमत्कार को ज्ञान कर नागशर्मा की आँखे खुल गई ।

महाराज ने संसार की मोहलीला और असारता को जानकर वैराग्य धारण किया । राजपाट अपने पुत्र को सौपने का संकल्प कर दीक्षा लेने का निर्धार किया । नागशर्मा ने जैनत्वपर श्रद्धा लाकर दीक्षा लेने का संकल्प किया । नागश्री ने भी आर्यिका के व्रत लेकर आत्मकल्याण का मार्ग अपनाया ।



आज अवन्तिका के नगर सेठ की हवेली दीपमाला के प्रकाश से जगमगा रही थी । बधाइयाँ बज रही थी । गरीबों को वस्त्र-भोजन बाँटे जा रहे थे । आज सेठ सुरेन्द्रदत्त की पत्नी यशोभद्रा ने पुत्र रत्न को जन्म दिया था । हवेली में आज कुलदीपक ने जन्म लिया था ।

बालक अति स्वरूपवान दिन दूना रात चौगुना दूज के चाँद सा बढ़ने लगा । उसकी मुस्कराहट माँ-बाप के जीवन में बसंत भर देती । बच्चे का लालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से होने लगा । बच्चे का नाम सुकुमाल रखा गया । सचमुच बालक यथानाम तथा गुणवाला था । माँ यशोभद्रा तो उसे किसी की नजर के सामने ही न आने देती । किसी की नजर न लग जाये । यही सोचती ।

यशोभद्रा को बालक की चिन्ता भी तो थी । उसने जब बालक सुकुमाल गर्भ में था तभी एक अवधिज्ञानी मुनि से पूछा था ।

“महाराज मेरा गर्भस्थ शिशु पुत्र है या पुत्री ? उसका भविष्य कैसा होगा ? वह कुल दीपक होगा ?”

महाराज ने अपने ज्ञान नेत्र से भविष्य को देखते हुए कहा -

“बेटी तेरे गर्भ मे पुत्र पल रहा है । यह महान पुण्यशाली अच्युत स्वर्ग का देव चय कर आया है । यह पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान एवं अनेक गुणों का धारक होगा । जिनधर्म की श्रद्धा से परिपूर्ण ही नहीं होगा अपितु उस मार्ग का अनुशरण करेगा । और....”

“और क्या महाराज ?” यशोभद्रा की आँखों और चेहरोपर जिज्ञासा दौड़ गई ।

“यशोभद्रा तेरा यह पुत्र तरण-तारण होगा । स्वयं तो परम चारित्र धारी मुनि बनेगा ही पर इसके दर्शन से और भी लोग दीक्षा धारण करेंगे । ” मुनि महाराज ने सांकेतिक उत्तर दिया ।

“महाराज मैं अर्थ नहीं समझ पाई ।” यशोभद्रा के पुनः पूछा ।

“सेठानी यशोभद्रा इस नवजात शिशुका मुख देखती ही तुम्हारे पति को वैराग्य होगा और वे मुनि दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण का पथ ग्रहण करेंगे । और यह तेरा पुत्र जब भी किसी जैन मुनि के दर्शन करेगा ,इसे भी वैराग्य होगा । और यह भी उसी भविष्य कथन का पथिक बनेगा ।” मुनि महाराज ने स्पष्ट शब्दों में भविष्य कथन किया ।

भविष्य भी वैसा ही हुआ । जैन साधु के वचन झूठे नहीं हो सकते । पुत्र का जन्म होने के पश्चात उसका मुख-दर्शन कर उसे सेठ-पद का तिलक कर सुरेन्द्रदत्त ने जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की ।

सेठानी यशोभद्रा को पति के विरह का दुख तो था ही कहीं पुत्र भी न चला जाये इस शंका से वे सदैव आशंकित रहती थी । जिस हवेली पर मुनि भगवंतो के चरण पड़ते थे । जिनके आहार कराने का सौभाग्य इस हवेली को मिला था - वहाँ पर अब मुनियों के आगमन पर प्रतिबंध लगा दिया गया । हवेली के अंदर ही नहीं-उनके प्रवेश का तो निषेध हवेली की चौहद्दी तक कर दिया गया । वे समस्त खिड़की दरवाजे बंद कर दिए गये जिससे मार्ग पर चलने वाले पथिक न दिखाई दें । यशोभद्रा नहीं चाहती थी कि उनका पुत्र हवेली में या हवेली से दिखाई देनेवाले पथ पर भी किसी जैन मुनि को देखे । वे सोचतीं - नृ ये मुनि को देखेगा और न उसे वैराग्य ही होगा ।

यशोभद्रा के पास धनकी कमी नहीं थी । उन्होंने अपनी हवेलीमें उन सभी उत्तम सुख सुविधाओं को सम्पन्न करा दिया जो सुकुमाल के लिए आवश्यक थी ।

खेल और खिलाड़ियों की सुविधा, पढ़ाई के लिए श्रेष्ठ गुरुओं की नियुक्ति एवं क्रीड़ा हेतु जलाशय, वाया, संगीत नृत्य आदि की मनोहारी व्यवस्था कर दी गई।

बालक सुकुमाल ज्यों ज्यों उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता गया त्यों-त्यों उसका रूप निखरता गया। वह सौन्दर्यशाली किशोर बन गया। उसकी मसं भीगने लगीं। किशोरवस्था से यौवन के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान की कलाओं में भी उसने उत्तरोत्तर प्रगति की।

पुत्र की इस प्रगति से माँ का हृदय फूला न समाता। वह उसकी हर इच्छा को पढ़ लेती और कुमार व्यक्त करे उससे पूर्व पूर्ण कर देती। बस एक ही आशंका.... कहीं मुनि दर्शन न कर ले। यही एक शंका की कील उसके प्रसन्नता के फूलों को काट रहा था।

यशोभद्रा की हवेली आज दुल्हन सी सजी थी। शहनाइयों के स्वर गूँज रहे थे। एक हसे से पूरे नगर के लोग मिष्ठान को आरोग रहे थे। पूरी हवेली ही नहीं पूरा नगर ही सजधजकर नई शोभा पा रहा था। हवेली में मेहमानों की चहल-पहल थी। सेठजी के सभी सगे-संबंधी पधारे थे। सबकी पूरी आगता-स्वागत की जा रही थी।

आज तो जैसे पूरा नगर ही उमड़ पड़ा था। हर रास्ता ही हवेली की ओर मुड़ गया था। अवन्ती नरेश, महारानी, मंत्रीगण, नगर के श्रेष्ठी, विद्वान कवि सभी का जमघट था। नृत्य हो रहे थे। फूलों की महक फैल रही थी।

आज युवा सुकुमाल को विवाह के पवित्र रिशतों में आबद्ध किया जा रहा था। एक दो नहीं श्रेष्ठ सुकुमार, गुणज्ञ, खानदानी बत्तीस पद्मीनि कन्याओं के साथ उनका विवाह सम्पन्न हो रहा था। बत्तीस लक्षणों वाला सुकुमाल बत्तीस सुकुमारियों का पति बन रहा था।

बत्तीसों वधुएँ इन्द्रकी परी ही लग रही थी। उनका रूप, सज्जा देखकर स्वर्ग की अप्सरायें भी लजा रही थी। सचमुच कामदेव से सुकुमाल को बत्तीस रति ही मिल गई थीं।

सेठानी ने इन पुत्रवधुओं को विशाल पृथक्-पृथक् भवन बनवाये थे जो समस्त भौतिक सुख सुविधाओं से युक्त थे। काम-क्रीड़ा को उत्तेजित करने वाला

वातावरण ही सर्जित किया गया था । सेठानी ने बहुओं को भी समझा दिया था कि वे उनके बेटों को भरपूर सुख और आनंद प्रदान करें ।

सुकुमाल इन अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हुए आनंद में दिन व्यतीत करने लगा । उसे ध्यान ही न रहा कि कब दिन ऊगा और कब डूबा । राते रंगीन थी और दिन रजत । सभी पत्नियाँ उसे अधिकाधिक रिझाने का प्रयास करतीं । अपने हाव-भाव, चितवन-वाणी से उसके चित्त को प्रसन्न रखतीं ।

सभी यही ध्यान रखतीं कि सुकुमाल का मन विषयों में फंसा रहे । और इस तरह भोग-विलास में सुकुमाल के दिन व्यतीत होते रहे ।

“सेठानीजी, बाहर कोई सौदागर आया है । ” दासी ने सूचना दी ।

“बैठाओ उसे ” यशोभद्रा दासी को आदेश देते हुए बाहर आई । उसने आगन्तुक सौदागर द्वारा लाए गए रतन जड़ित कम्बलों को देखा । बातचीत के दौरान व्यापारी ने बताया कि महाराज प्रद्योतन अधिक-मूल्य होने के कारण एक भी रत्न जड़ित कम्बल नहीं खरीद सकें । यशोभद्रा ने इस रतन जड़ित कम्बल को देखा, उसे पसन्द आया और सौदागर को मुंह माँगा दाम देकर कम्बल खरीद लिया ।

कम्बल सुकुमाल के पास भिजवा दिया गया । लेकिन कोमल सुकुमाल को रत्नों की जड़ायी के कारण कम्बल कड़ा लगा । इसलिए उसने उसे ना पसन्द करते हुए वापिस भिजवा दिया । सच भी है, सुकुमाल भोग-विलास की उन कोमलताओं को भोग रहा था, जिनमें कहीं कोई कड़ापन नहीं था ।

सेठानी को आश्चर्य भी हुआ और आनन्द भी ।

उसे आश्चर्य था कि यह बहुमूल्य कम्बल उसके बेटे ने पसन्द नहीं किया और प्रसन्नता इस बात की थी कि बेटा भोग-विलास में इतना डूब गया है कि उसे रत्न जड़ित कम्बल भी गड़ने लगे । यशोभद्रा ने इतने बहुमूल्य कम्बल के बत्तीस टुकड़े करवाकर बहुओं के लिए जूतियाँ बनवा दीं । रत्न जड़ित कम्बल के रत्न बहुओं की जूतियों में जगमगा उठे । बहुएँ इन जूतियों को पाकर प्रसन्न थीं ।

“महाराज यह जूती मेरे छत पर पड़ी थी । रत्न जड़ित इतनी कीमती जूती किसी महारानी की होगी, यह समझ कर मैं यहाँ लौटाने आयी हूँ । ” जूती को महाराज को प्रस्तुत करते हुए नगर की प्रसिद्ध नर्तकी ने कहा ।

महाराज प्रद्योतन इस जूती को देखकर चकित रह गये । उसके जगमगाते हीरे उनकी आँखों में चकाचौंध भरने लगे । वे मन ही मन सोचने लगे कि मेरे राज्य में वह कौन सा धनी सेठ है जिसके यहाँ ऐसी कीमती जूतियाँ पहनी जाती हैं ! राजा ने वह जूती उस वेश्या को ही इनाम स्वरूप देकर विदा किया और अपने मंत्री को बुलाकर खोज करने का आदेश दिया । महाराज के आदेश का पालन किया गया । और मन्त्री ने अपने गुप्तचरों द्वारा यह पता लगाया कि यह जूती नगर सेठ सुकुमाल की पत्नी के पाँव की है ।

राजा को प्रसन्नता हुई कि उनके राज्य में उनसे भी अधिक धनी सेठ हैं । सुकुमाल से मिलने की उत्कंठा उनके मन में जागी । उन्होंने सुकुमाल जी सेठ के यहाँ यह संदेश भिजवाया कि वे उनसे मिलने आ रहे हैं ।

“पधारिये महाराज ।” कहते हुए यशोधरा सेठानी ने महाराज का स्वागत किया । दासियों ने महाराज की आरती उतारी, उनके चरण प्रक्षाल किए । महाराज को उच्च आसन पर बैठाया गया । महाराज से पुत्र सुकुमाल का परिचय कराया । महाराज के वात्सल्य भाव से सुकुमाल को अपने पास बैठाया । सेठानी यशोधरा ने अपने पुत्र और महाराज की आरती उतारी । सुकुमाल की आँखों से पानी बह निकला ।

“सेठानीजी, सुकुमाल की आँखों से पानी क्यों बह निकला ।” महाराज ने जिज्ञासा से पूछा ।

“महाराज, मेरे बेटे सुकुमाल को रत्नमयी दीपक के प्रकाश में ही देखने की आदत है । उसकी आँखों ने शीतल प्रकाश को ही देखा है । आज इस दीपक की लौ को देखने से उसकी आँखों में पानी आ गया ।”

“सेठानी जी, आपके पुत्र चावलों में से दाने बीन कर क्यों खा रहे हैं ।” सुकुमाल को भोजन करते समय एक-एक चावल चुन-चुन के खाते हुए देखकर महाराज ने जिज्ञासा वश सेठानी से पूछा ।

“महाराज, मेरे बेटे को खिले हुए कमलों में रखकर सुगन्धित चावल खाने की आदत है । आज वे चावल थोड़े होने से उनमें अन्य चावलों को मिलाकर चावल पकाये गए हैं, अतः सुकुमाल चुन-चुन कर सुगन्धित चावलों को खा रहा है ।”

सेठानी के इन उत्तरों से महाराज को सुकुमाल की रूचि, उसकी कोमलता

का पता चला ।

“सेठानी और वह जूती । ”

“महाराज वह जूती मेरी बहू के पाँव की थी जिसे वह खील कर ले गई थी, जो उसकी चोंच से छूटकर शायद वेश्या के मकान की छत पर गिरी थी । वही आप के पास लाई होगी । ”सेठानी ने समस्त घटना कह सुनाई ।

“सेठानी जी मैंने वह जूती उसी वेश्या को उपहार स्वरूप दे दी है । ”

“ महाराज एक जूती लेकर वह क्या करेगी ,लीजिए यह दूसरी जूती इसे दे दीजिएगा कि जिससे वह पहन सके । क्योंकि अब वह जूती मेरी बहू के काम की नहीं । ” कहते-कहते यशोभद्रा ने दूसरी जूती भी महाराज को प्रदान की । जिसे महाराज के इशारे से उनके सेवक ने ग्रहण की ।

महाराज इससे बड़े प्रभावित हुए । उन्होंने सेठानी से कहा, “सेठानी जी, आप बड़ी पुण्यशाली हैं । कि आप को ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ । मैं इन्हें अवन्ती का सुकुमाल घोषित करता हूँ, वे मेरे राज्य की सुकुमालता और सौन्दर्य के प्रतीक हैं । ”

महाराज प्रद्योतन सुकुमाल को संग लेकर जल क्रीड़ा हेतु हवेली में ही निर्मित सरोवर में गए । जल क्रीड़ा करते समय राजा की उगली से उनकी अंगूठी सरोवर में गिर गई । महाराज ने डुबकी लगाकर अपनी अंगूठी ढूढने की कोशिश की । वहाँ उन्होंने देखा कि उनकी अंगूठी से अधिक कीमती हजारों गहने वहाँ पड़े हुए हैं । इस अनन्त वैभव को देखकर उनकी अक्ल की चकरा गई । वे सोचने लगे कि यह सब पुण्य का ही प्रभाव है । उनके मन में यही सदविचार उठा कि सम्पूर्ण सुख सुविधाएँ धन-धान्य ये सभी पूर्व जन्म के शुभ परिणामों के कारण सम्भव हैं ।



यशोभद्रा सेठानी के महल के पीछे ,विशाल हरे-भरे उद्यान में आज भक्तों की भीड़ थी । उद्यान में विहङ्ग मुनि गणधराचार्य जो सुकुमाल के पूर्व जन्म के मामा थे , वहाँ विचरण करते हुए पधारे थे । समाचार नगर भर में फैल चुका था । अतः दर्शनार्थी अपना पुण्य-उदय मानते हुए दर्शन हेतु आ रहे थे । जिनागम की अमृत वाणी सुनने के लिए वे चातक की भांति मुनि श्री के मुखारविन्द को निहार

रहे थे । मुनि श्री का प्रवचन प्रारम्भ हुआ :--

“पुण्यात्माओं , भगवान जिनेन्द्र के बताये हुए मार्ग पर चलने से ही सच्चे सुख की प्राप्ति सम्भव है । संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है । पर सच्चा सुख भौतिक पदार्थों में नहीं । ये समस्त सुख तो पुण्य का उदय है ,और पुण्य भी चतुर्गति का कारण है । अनन्त सुख या चिर सुख तो पुण्य और पाप से ऊपर उठ कर जन्म-मरण से मुक्त होने में है । मनुष्य को क्रमशः व्रतों को धारण करते हुए ,मुक्तिपथ पर आगे बढ़ना चाहिए । ” महाराज की गुरू गंभीर वाणी से उपदेश की सरिता ही प्रवाहित हो रही थी । और श्रोतागण ध्यानस्त होकर उसमें अवगाहन कर रहे थे ।

सुकुमाल गवाक्ष से उद्यान की भीड़को देख रहा था । और महाराज के स्वर की भनक उसे सुनाई पड़ रही थी । उसे अपने कर्मचारी द्वारा इतना ही पता चला कि उद्यान में कोई जैन साधु पधारे हैं । सुकुमाल ने सोचा कि जब इतने लोग उनके दर्शनों को दौड़ रहे हैं तो निश्चित रूप से वे बड़े धनवान पुरूष होंगे । पर उन्हें अपने कर्मचारी द्वारा ज्ञात हुआ कि वे तो परम दिगम्बर हैं । एक पीछी और कमण्डलु के सिवाय उनके पास कुछ भी नहीं है । उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उनसे मिलने का दृढ़ निश्चय किया ।

प्रातः काल प्रत्यूष बेला में जब ऊषा कुम-कुम के थाल सजाये सूर्यदेव की अगुवानी कर रही थी, पक्षी कल-कल के संगीत से स्वागत के गीत गा रहे थे,पुष्प अपनी सुगन्ध लुटा रहे थे , समस्त वातावरण प्रभात के स्वागत में प्रफुल्लित था तभी सुकुमाल ,माँ की नजरे बचाकर गुप्त रूप से उद्यान में पहुंचा । सुकुमाल ने पहली बार जैन साधु के दर्शन किए । उनके मुख की क्रान्ति ,आँखों के वात्सल्य से वह स्वयं प्रभावित हुआ, नमस्कार करके उनके सामने बैठा । महाराज की आँखों में आँखों मिलाते ही उसे एकाएक जाति स्मरण हो आया । पूर्व भव के समस्त दुःख उसके सामने चलचित्र से दृश्यमान हो उठे ।

“ वस्तु ,तुम्हारी आयु अब मात्र तीन दिन शेष रह गई है । वर्तमान सुख और वैभव तुम्हारे पूर्वजन्म के पुण्य का फल है । गत जन्म में अन्तिम समय में मोहमाया को त्याग कर तुमने वैराग्य धारण किया था । जिससे यह सुख सम्पत्ति

प्राप्त हुई । इस जन्म में तुम विषय वासनाओं में इतने डूब गए कि आत्महित की ओर ध्यान ही नहीं दिया । संसार में कोई भी प्राणी सर्प के समान इन भोगों में फँस कर सुखी नहीं हुआ । ये भोग तो कुत्ते की दाढ़ में फँसी हुई हड्डी के समान हैं, जो स्वयं के रक्त का स्वाद लेने के समान है । तुम माँ की अन्धी ममता में फंसे रहे और माँ भी मोह के वशीभूत होकर तुम्हें सत्य से वंचित किए रही । ” महाराज ने अपने उद्बोधन द्वारा संसार का वास्तविक चित्र खींचा । सुकुमाल ने यह सब बड़े ध्यान से सुना और उसे वैराग्य हो गया । उसने उसी समय महाराज से जिनदीक्षा ग्रहण की ।

सुकुमाल सेठ मुनि हो गए हैं । यह आश्चर्य जनक खबर समस्त नगर में वायुवेग से प्रसारित हो गई । कुछ लोगों को विश्वास ही नहीं हुआ, और कुछ लोग आश्चर्य में डूब गए । बत्तीस पत्नियाँ दिगमूढ़ रह गई, और माता यशोभद्रा का हाल ही बेहाल हो गया । वे विलख-विलख कर सुकुमाल से कह रही थी - “बेटा, यह तुमने क्या किया । अभी तुम्हारी उम्र क्या है ? ये तो तुम्हारे आनन्द मनाने के दिन हैं । ”

“माँ ! मैं अभी तक मोह के वशीभूत रहा, वासना के अन्धकार में जीवन के सत्य को जान ही न पाया । मैंने ऐसा यौवन अनेक जन्मों में पाया, पर वह बुढ़ापे में ढल गया । यह शरीर अनेक रोगों का घर है, मरण धर्मा है । ये वैभव न कभी साथ गए हैं और न कभी साथ जायेंगे । सुकुमाल ने माँ को धीरज बधाते हुए समझाने का प्रयत्न किया । ”

“बेटा, यह मार्ग बड़ा कठिन है, तुम कोमल हो । मार्ग के कष्ट भूख-प्यास, वर्षा-सर्दी-गर्मी के कष्ट तुम कैसे सहोगे ? दीपक की लौ से भी तुम्हारी आँखे जलने लगती हैं, मखमल से नीचे तुम कभी चले नहीं हो । फिर ये कष्ट कैसे सहोगे ? ” माँ ने साधु जीवन के कष्टों का भय दिखाकर समझाने का प्रयत्न किया ।

“माँ ! ये सारे कष्ट तो इस पुद्गल के हैं, आत्मा को कोई कष्ट नहीं होता वह तो इन सब से ऊपर है । माँ मैं इन्हीं कष्टों पर विजय पाने के लिए और आत्मा के चिरन्तन सुख जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए ही इस त्याग-यात्रा पर निकल

रहा हूँ ।” सुकुमाल ने दृढ़ता से कहा ।

“बेटा, तुम्हारी ये बत्तीस सुकुमार पत्नियां तुम्हारे विरह को कैसे सहन करेगीं ?”

“माँ, विरह और प्रेम ये सब मोह के परिणाम हैं । मिलना औप बिछड़ना यह संयोग है । आप और ये सभी परम जैन धर्म का अनुशरण करें और आत्मा की उन्नति करें ।” इतना कहकर सुकुमाल घर से बाहर नंगे पांव निर्वस्त्र निकल पड़े ।

बाहर अपार जनसमूह ने देखा युवा मुनि सुकुमाल को । जिन लोगो ने उसकी सुकुमारता और वैभव की बातें सुनी थी आज उसके इस त्याग पूर्ण मुनिरूप को देखने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें । सुकुमाल के चेहरे की दिव्यता, शरीर का सौन्दर्य, झुकी हुई आँखें ऐसा भासित कर रहा था, मानो कामदेव ने स्वयं वैराग्य धारण किया हो । लोगों के मुख से एक ही ध्वनि निकल रही थी । “मुनि सुकुमाल की जय हो, जैन धर्म की जय हो ।” आकाश इन जयघोषों से गूज रहा था ।

राज वैभव को तृणवत त्यागकर, भोगविलास को तिलांजलि देकर, पत्नियों का प्यार और माँ की ममता ते मोह से मुक्त होकर समस्त जन समुदाय को अंतिम जुहार कर मुनिवेशधारी मुनि सुकुमाल मुक्ति के पथ पर बढ़े जा रहे थे । एक जन्म के मुनि जिनधर्म विरोधी वायुभूति आज उसी जिनधर्म के मार्ग पर मुनि बनकर प्रयाण कर रहे थे । मखमल में भी चुभन महसूस करने वाले सु कोमल पांवों को आज धरती के कंकड़ पत्थर भी चुभन नहीं दे पा रहे थे । दीपक की लौ से तिलमिला उठने वाली आँखें आज सूर्य के प्रखर तेज को सहन कर रही थीं । कीमती आभूषणों और वस्त्रों से विभूषित एवं सुगंधित कीमती लेपों से लेपित देह आज निर्वस्त्र थी । ठंडी गर्मी का प्रभाव ही जैसे लुप्त हो गया था । विराग के सामने राग परास्त हो गया था । योग ने भोग को हरा दिया था । आज उसे कोई भी आकर्षण बांधने में असमर्थ था ।

“मेरी आयु के तीन ही दिन शेष है । अरे मैंने जीवन के इतने वर्ष पानी में ही बहा दिए ।” इसी चिंतन के साथ आत्माका परमात्मा से मेल कराने वे प्रगाढ़ वन की ओर बढ़े जा रहे थे ।

मुनि सुकुमाल घने जंगल में एक स्वच्छ शिला पर समाधिमरण का संकल्प कर दृढ़ता पूर्वक ध्यानस्थ हो गये ।

मुनि के पांवों से बही रक्त की धारा को देखकर जंगल से गुजर रही सियारानी के मुँह में पानी भर आया । वह भूमिपर पड़े रक्त को चांटती जाती थी । रक्त चांटते चाटते उसे जातिस्मरण हो आया । उसे याद आया -“ अरे यह तो मेरा पूर्व भव का वही देवर है । वायुभूति है जिसके कारण मेरे पति को वैराग्य हो गया था । जिसने मुनि निंदा की थी । मेरे से वे यह कहने पर कि वे तुम्हारे कारण ही तुम्हारे भाई मुनि हो गये इस पर नाराज होकर मुझे लातों से मारा था । यही वह दुष्ट है जिसके कारण मुझे पति विरह की अग्नि में जलना पड़ा था । ”

शृगालिनी के भावों में हिंसा भड़क उठी आँखों में बदले की भावना की चिनगारियाँ उठने लगी । मैंने तभी प्रतिज्ञा की थी कि मैं जब भी जिस जन्म में भी मौका मिलेगा बदला अवश्य लूंगी । आज वह मौका मुझे मिला है । सियारानी प्रसन्न थी कि आज उसे अपने अपमान का बदला लेने का अवसर मिला है ।

अग्निभूति की इस पत्नी का मरण आर्तारौद्र ध्यान के कारण हुआ । इस कुध्यान के कारण वह अनेक कुयोनियों में भटक कर इसी वन में शृगालिनी के रूप में जन्मी थी । उसके साथ उसके बच्चे भी थे ।

सुकुमाल के खून की बूँद ने उसे सब कुछ स्मरण दिया दिया । अब वह बेचैन थी उनकी देह का भक्षण कर अपनी वैर भाव का बदला लेने को । सियारानी खूनकी धार का अनुशरण करती हुई वहाँ पहुँची जहाँ मुनि सुकुमाल पूर्ण ध्यान में लीन थे । अब तो आयु के दो ही दिन शेष थे । वे धर्मध्यान से ऊपर उठकर शुक्लध्यान में अवस्थित हो चुके थे ।

अपने वैरी को देखकर शृगालिनी का क्रोध और भी भड़क उठा । वह उनके निकट अपने बच्चों सहित पहुँची । उनके शरीर पर प्रहार कर उसे नोच नोच कर खाने लगी । पूरे शरीर में सौकड़ो घाव रिसने लगे । खून की धारा बहने लगी । मांस के लोथड़े लटकने लगे । शृगालिनी इस मांस को खाती, खून पीती और राक्षसी आनंद से चीखती । लगता था अपनी इस सफलता का वह जश्न मना रही है ।

इधर ज्यों-ज्यों मुनि सुकुमाल की देह क्षत विक्षत हो रही थी त्यों-त्यों उनके कर्म क्षय हो रहे थे । श्रृगालिनी जितनी खुश हो रही थी उसके पापकर्म उसे उतना ही बाँध रहे थे ।

जिस सुकुमाल शरीर ने एक खरोच भी नहीं सही थी वे इस घोर कष्ट में भी सुमेरू से अचल थे । उन्हें पता ही कहाँ था कि वे देह में हैं । पुद्गल की माया तो कब से छूट गई थी । श्रृगालिनी के इस वीभत्स रूप से उनकी देह का भक्षण करना इस कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाये ऐसा दृश्य था वर्णन ही हृदय को पिघलाने वाले अश्रु से भिगोने वाला था ।

पूरे तीन दिन तक श्रृगालिनी ने मुनि के शरीर का भक्षण किया । सुकुमाल मुनि इस सबसे बेखबर उपसर्ग को सहन कर रहे थे । सच भी है कि जिसे देव शास्त्र गुरु पर, जिन धर्म पर सच्ची श्रद्धा होगी उसमें निर्मलता के गुण, क्षमा करुणा, मैत्री समता के भाव ही प्रगटेंगे । ऐसे तपस्वी के समक्ष भय भी भय खाता है । मृत्यु भी हाथ जोड़े खड़ी रहती है । आत्मा की पवित्रता विघ्नों से कभी नहीं डरती ।

देह क्षीण हो रहा था, पर मनोभाव उज्ज्वल प्रकाशवान होते जा रहे थे । अरे उन्हें तो सियारानी पर भी क्रोध नहीं आया था वे तो समभाव के सागर को आत्मसात कर चुके थे ।

आखिर आयु का वह अंतिम तीसरा दिन आ गया । क्षण भर भी न्यूनाधिक नहीं होने वाली आयु का आज अंतिम दिन था । मृत्यु मुनिजी के लिए आज महोत्सव ही थी । उनके कर्मबन्ध पूर्णरूप से कट चुके थे । आज उनके घातिया अघातिया कर्म क्षय हो चुके थे । वे आज इस चिन्तन आत्मा को देह से पृथक कर रहे थे । सांध्यावेला में आत्मा देह से पृथक चिर शांति को प्राप्त कर मुक्त हो गया ।

मुनि सुकुमाल की इस दृढ़ता ने स्वर्ग के इन्द्रासन को भी हिला दिया पूरे स्वर्गलोक में उनकी दृढ़ता समता के चर्चे हो रहे थे । उनकी वीरमृत्यु का गुण गान गाया जा रहा था । स्वर्ग से आकर देवताओं ने उनका मृत्यु महोत्सव मनाया ।

देह के सुकुमाल त्याग के महान प्रतीक बन गये ।

सुकोशल मुनि

परमपूज्य मुनि महाराज नयन्धर तीर्थकरों की जन्म भूमि अयोध्या में विहार करते हुए पधारे है । नगर जन यह समाचार मिलते ही प्रसन्नता से भर उठे । मुनि दर्शन के भाव उमड़ पड़े । जनसमुदाय उनके दर्शन प्रवचन से लाभान्वित होने के लिए उद्यान की ओर उमड़ रहा था । यह तो इस नगर का ,नगर वासियों का सौभाग्य था कि उन्हें मुनि-दर्शनों का लाभ प्राप्त हो रहा था ।

उद्यान श्रोताओं से भर गया था । नगर के राजा, मंत्री, वरिष्ठ अधिकारी, श्रेष्ठीजन ,जिज्ञासु, धर्मिष्ठ श्रावकों का मेला ही जुड़ गया था ।

महाराज नयन्धर का मुख मंडल ज्ञान और तपकी आभा से आलोकित था । ब्रह्मचर्य का तेज निखर उठा था । चेहरे की शांति आँखों का करूणा ,वाणी के वात्सल्य रस से लोग श्रद्धा से नतमस्तक थे । धर्मलाभ का आशीर्वाद पा रहे थे । अवधिज्ञानी मुनि महाराज उच्चासन पर विराजमान थे । उनकी गिरि-गंधीर-गिरा गूंज उठी-

“ धर्मप्रेमी श्रोताओ ! संसार में समस्त प्राणी सुख के आकांक्षी हैं । और सुख शुभ कर्मों का ही परिणाम है । सुख और दुख मनुष्य के कृत्यों पर आधारित हैं । यद्यपि दोनों भव भ्रमण के कारण हैं । पर दुखसे छूटकारा पाकर सुख की प्राप्ति यह प्रथम प्रयत्न होता है । ज्ञानी पुरुष मुमुक्षु जीव इस सुख को जो भौतिक है- उसे भी त्याग कर सच्चे आत्मसुख को ही लक्ष्य बनाता है । हम जिन सुखों की आकांक्षा करते हैं वे सभी कर्माधीन हैं । उत्तमज्ञान, दर्शन, चारित्र, लम्बी आयु, शरीर सौन्दर्य, उच्चगोत्र आदि सभी कर्मों के कारण भूत हैं । धन-जन की प्राप्ति आदि उसी के कारण है । पर याद रखना ये साधन हैं-साध्य नहीं । साध्य होना चाहिए मोक्ष की कामना । जन्म-मरण से मुक्ति । जबतक हम मोह के बंधन से बँधे रहेगे तबतक समस्त दूषणों से घिरे रहेंगे । यही मोह कर्मों का राजा है । जो संसार से छूटने ही नहीं देता । अतः मोह को बंधन जान कर उससे मुक्ति का प्रयास करते रहो । ” मुनिश्री के वचनों से मानों अमृत झर रहा था । श्रोतागण मंत्र-मुग्ध होकर श्रवण कर रहे थे । कईयों की आत्मज्ञान की आँखे खुल रही थीं ।

श्रोतागण प्रवचन पूर्ण होने पर गुरु वंदन-भक्ति कर विदा हो रहे थे । सभी श्रोताओं के चले जाने पर भी एक महिला अभी भी अपने स्थान पर बैठी थी । अभी भी वह महाराज के प्रवचनों में खोई थी । वह स्त्री थी अयोध्या के नगर श्रेष्ठी सिद्धार्थ की सेठानी जयावती ।

“महाराज मेरे विवाह को ३ वर्ष हो गये । मेरी गोद अभी तक नहीं भरी ।” सजल नेत्रों से नत मस्तक होकर सेठानी ने अपने अंतर की व्यथा व्यक्त की ।

“बेटी ये सब कर्मों के फल हैं । सम्पत्ति सन्तान मान-मर्यादा आदि सभी पुण्य कर्म के फल हैं । सेठानी तुम्हारे पति सिद्धार्थ की तुम बत्तीस पत्नियाँ हो । सभी रूप गुण में अद्वितीय हो । पर किसी के सन्तान न होना यह भी सिद्धार्थ सेठ एवं तुम्हारी बहनों के कर्मों का ही परिणाम है । ” अवधिज्ञानी महाराज ने जयावती को उनके परिवार की बातें बतलाई । महाराज को सब कुछ कैसे पता चला ? अरे ये तो अन्तर्योगी हैं । सोचते हुए जयावती उनके चरणों में लोट गई ।

“जयावती उत्तम पदार्थों की प्राप्ति के लिए सच्चे देव-शास्त्र-गुरु धर्म पर श्रद्धा आवश्यक है । ऐसी श्रद्धा ही सात्विकता को जन्म देती है । जयावती तुमने पुत्र प्राप्ति के लोभ में कुदेवों की पूजा अर्चना वंदना की है । अयोग्य उपायों का सहारा लिया है । अहिंसक मार्ग से च्युत हुई हो । अतः उत्तम सुख कैसे मिल सकेगा ? यज्ञादि हिंसक कृत्यों को त्याग कर सच्चे जैनधर्म पर श्रद्धा लाओ । विश्वास रखो सभी उपलब्धियां शुभ कार्यों से निर्मित शुभ कर्मों से ही संभव हैं ।” कहते हुए मुनि महाराज ने जयावती को सद्धर्म की ओर प्रेरित किया ।

“क्षमा करें महाराज मैं कुपथ पर थी । मैंने अनेक देवी देवताओं को पूजा है । अनेक यज्ञादि द्वारा जीवहिंसा की है । मैं गलत मार्ग पर थी । आपने मेरी आँखें खोल दी हैं । मैं आज से प्रतिज्ञा करती हूँ कि जैनधर्म जैनागम जैनमुनि के अलावा किसी भी कुदेव की शरण नहीं जाऊंगी । ”

जयावती को बड़ा आश्चर्य और श्रद्धा हुई । आश्चर्य इसलिए कि महाराज ने उसके इन कृत्यों को कैसे जाना ? और श्रद्धा कि महाराज कितने अवधिज्ञानी एवं सन्मार्ग पर लगाने वाले हैं । उसकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ़ हो गई । उसने उसी समय महाराज श्री से श्रावक के अणुव्रतों को ग्रहण किया ।

“बेटी तू जैनधर्म पर सच्ची श्रद्धान्वित हुई है । ठीक सात वर्ष के पश्चात तेरे

पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी । ” अवधिज्ञान से ज्ञात कर महाराज ने जयावती को आशीर्वाद दिया ।

जयावती इस आशीर्वाद से गद् गद् हो गई । वर्षों की संचित अभिलाषा उसे अंकुरित होते दिखाई दी । आज वह इतनी प्रसन्न थी कि उसके पांव में मानों पंख लग गये थे ।

जयावती ने घर आकर यह समाचार अपने पति सिद्धार्थ एवं अपनी अन्य ३१ बहनों को सुनाये । सबके हर्ष का पार न रहा । सिद्धार्थ को लगा कि उनके कुल में दीपक जलेगा ।



सिद्धार्थ सेठ की हवेली में आज दीपमालिका की सी जगमगाहट थी । पटाखे फोड़े जा रहे थे । मिठाईयाँ बाटी जा रही थीं । पूरे नगर के गरीबों को भोजन वस्त्र बाँटे जा रहे थे । गीत-संगीत की सुरावली से वातावरण गूँज रहा था । आज का यह शुभदिन सेठानी जयावती के पुत्र जन्म के कारण इस हवेली को प्राप्त हुआ था । सेठानी के गर्भ से पुत्र रत्न ने जन्म लिया था । चाँद का टुकड़ा ही जैसे जयावती के गर्भ से अवतरित हुआ था । बालक के नाकनक्श सुन्दर, मनोहरी और वर्ण गौरववर्ण था । पुत्र जन्म का समाचार सभी को प्रफुल्लित कर रहा था । सोहर के गीतों से शौरमृत भी गूँज उठा था । जयावती को आज जैसे दुनिया का सबसे बड़ा धन प्राप्त हो गया था । उसे आज नारी जीवन की सार्थकता का अनुभव हो रहा था । वात्सल्य भाव की लहरें उसके हृदय सागर में उठ रही थीं । दास दासियाँ अपना इनाम पाकर दुआ दे रहे थे । बालक के ग्रह-नक्षत्र देखे गये । उसका नाम सुकोशल रखा गया ।

जब सारी हवेली आनंद में डूबी थी । पुत्र जन्म की खुशी के स्वर गूँज रहे थे । उस समय सेठ सिद्धार्थ कुछ और ही सोच रहे थे । यद्यपि वर्षों से उनका मन भोगों से ऊब रहा था । वे आत्मा के चिर सुख के आकांक्षी बन रहे थे । उनका मन बार-बार संसार के भोग-विलासों को त्याग कर जिनेश्वरी दीक्षा के लिए तैयार हो रहा था । वे वैसे तो घर में भी त्यागी से ही रहते थे । देह में भी विदेह से थे । पर उन्हें अब घर में बेचैनी सी होने लगी थी । आज वे भी प्रसन्न थे । उन्हें लगा कि अब वह सुयोग आ गया । जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी । आज तक उन्हें यह चिंता

थी कि उनका कोई वारिश नहीं- पर आज प्रभु-कृपा से शुभकर्म से उदय से वह भी पूरी हो गई । वारिश भी अवतरित हो चुका है । उन्होंने सोचा “अब मुझे विलंब नहीं करना चाहिए । मोह से छूटने का यही उचित समय है ।” सिद्धार्थ का मन विकल्पो से मुक्त होकर एक दृढ़ निश्चय को प्राप्त कर रहा था । यह एक सुयोग ही था कि उसी समय अवधिज्ञान धारी तपस्वी मुनि नयन्धर भी वहीं विराजमान थे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल अपनी पत्नियों , कर्मचारियों एवं निकटम संबंधियों की उपस्थिति में सेठ सिद्धार्थ ने अपना संकल्प व्यक्त करते हुए कहा -

“ परिवार के प्रिय स्वजनों मैंने आपको यहाँ इसलिए एकत्र किया है कि मैं आपकी साक्षी में यह संकल्प व्यक्त करना चाहता हूँ कि मैं अब अपने नवजात शिशु सुकोशल को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर उसे सेठका पद सौंप कर जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ । जबतक पुत्र बालिक नहीं होता । तबतक मेरे प्रधान व्यवस्थापक , एवं मेरी प्रिय सेठानी जयावती सारे प्रबंध देखेगी । ”

अपनी तिजोरी की चाबी जयावती को सौंपी एवं बालक सुकोशल को सेठपद का तिलक किया । उनके इस निर्णय को सुनकर सभी स्तब्ध रह गये ।

“प्राणनाथ ऐसा न करें । अभी आपकी उम्र ही क्या है ? इस यौवन में आप यह कैसा निर्णय ले रहे हैं । अभी आपके पुत्र की उम्र ही दो दिन की है । इसे बालिग होने दीजिए । ” विलखते हुए जयावती एवं अन्य पत्नियों ने विनंति की ।

“हाँ-हाँ सेठ जी सेठानी ठीक कह रही है । आप इस पुत्र को बड़ा होने दें । इसकी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करायें , इसका विवाह करें , पौत्र का मुख देख कर ही आप ऐसा कठोर निर्णय लें । ” रिश्तेदारों ने भी समझाने का प्रयास किया ।

“प्रिय जया ! भाईयों ! वास्तव में तप की उम्र ही यौवन काल है । यही श्रेष्ठ समय है । पुत्र परिवार यह सब मोह ही है । मैं उसकी परवरिश करने, उसके विवाह आदि तक रुककर मोह का ही पोषण करूँगा । मैं यह दीक्षा तो बहुत पहले ले लेना चाहता था पर उत्तराधिकारी की प्रतीक्षा में था । वह पूर्ण हो-चुका है ।” सेठ ने समझाते हुए दृढ़ता से कहा । पुनश्च -“कोई किसी को पालता नहीं । परवरिश करता नहीं । ये सब मोह जनित शब्दजाल हैं । होता स्वयं जगत परिणाम की दृष्टि से सब स्वकर्म का फल है । मैं अब अधिक इस मोहनीय कर्म का बंधन नहीं चाहता ।

पत्नियाँ चरणों में लोट गईं । जया ने तो पुत्र को ही चरणों में रख दिया । पर मोह के पर्दे से मुक्त सिद्धार्थ के लिए यह सब बेकार था । पत्नी के आंसू-पुत्र की मुस्कराहट, सेवको का अनुनय, संबंधियों की सलाह सब निरर्थक थी । देह से भी अब जिनका ममत्व टूट रहा था उन्हें दूसरों का ममत्व क्या बाँधता । अपने निर्णय में दृढ़ सिद्धार्थ ने अपने कदम घरसे बाहर रखते हुए इतना ही कहा, "अच्छा आप सभी से मैं क्षमा याचना करता हूँ । मन वचन कर्म से आप लोगों को कष्ट हुआ हो तो क्षमा करें । मोह को त्याग कर भगवान् जिनेनुदेव वे चरणों में अपना मन लगायें ।"

क्षण में ही इस माया के मोह को छोड़कर सिद्धार्थ अब गृहत्यागी बन चुके थे । जिस देह पर कीमती वस्त्राभूषण होते थे । वहाँ अब सिर्फ एक वस्त्र था । पाँव नंगे थे । वे धीरे-धीरे उस उद्यान की ओर बढ़ रहे थे जहाँ मुनिश्री विराजमान थे । उनके पीछे-पीछे सारा परिवार और वे सभी चल रहे थे जिन्होंने इस समाचार को सुना था ।

महाराज श्री को नमोस्तु कह कर सभी लोग बैठ गये ।

"महाराज मैं संसार के भोग-विलास को तिलांजलि देकर आपकी शरण में आया हूँ । मुझे दीक्षा देकर वह मार्ग प्रशस्त करे जिससे मैं आत्म कल्याण कर सकूँ ।" सेठ सिद्धार्थ ने महाराज से विनय की ।

धर्मलाभ कहते हुए नयन्धर महाराज ने आत्मा के अमर स्वरूप का वर्णन करते हुए सभी को संबोधन किया । चिरसुख अर्थात् जन्म-मरण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए उसके महत्व को समझाया । मोह के कारण चतुर्गति में भटकने वाले इस जीव को कैसे-कैसे दुःख देखने पड़ते हैं उसकी भयानकता को उदाहरण देकर समझाया ।

पश्चात् विशाल जन समुदाय की उपस्थिति में सेठ सिद्धार्थ को दिगंबरी दीक्षा प्रदान की । थोड़ा सा भी कष्ट जिन्हें सहन नहीं था भोंगों में जो पले थे, आज वे अपने ही हाथों अपने केश लुंचन कर रहे थे । परिषदजयी बन रहे थे । लोग जयजयकार से आकाश को गुंजा रहे थे । कल तक के सेठ आज आत्मा के सेठ बन गये थे । वे आत्म कल्याण में लीन हो रहे थे ।

मोह मनुष्य को अंधा बना देता है । वह सत्यासत्य के विवेक को खो देता है । पुत्र मोह एवं स्वार्थ ने जयावती को मोहांध बना दिया । जिस जैनधर्म पर श्रद्धा

एवं मुनि वचनों की सत्यता पर विश्वास करने एवं शुभोदय से पुत्र की प्राप्ति हुई थीं । आज उसे पति के गृह त्यागने पर उतनी ही घृणा और अश्रद्धा हो गई । उसे रह रहकर मुनि नयन्धर पर क्रोध आ रहा था । जिन्होंने उनके पति को यौवन में ही दीक्षा दे दी थी । उसे यह पूर्वाग्रह बँध गया था कि उसके पति को मुनि ने यदि समझाया होता तो वे मुनि न बनते । उल्टे इन्होंने तो मेरे पति के वैराग्य भाव को उकसाया है । उसके मन में मुनि के प्रति छेप की गांठ बंध गई ।

उसे अपने पति पर भी क्रोध आ रहा था जो इस वैभव को छोड़कर असमय में ही घर छोड़ गया था । उसे लगता था कि उसके पति ने पलायन किया है ।

इस प्रकार जयावती ने मन में मुनि महाराज एवं अपने पति सिद्धार्थ-जो अब मुनि अवस्था में थे, उनके प्रति निरन्तर आर्त-रौद्र भाव पनपने लगे । मुनियों के प्रति उसके मन में जो श्रद्धा भक्ति थी वह घृणा में तो बदल ही गई थी । उसने अपनी हवेली में मुनियों का आना ही बंद करा दिया । उसे जैनमुनि के नाम से चिढ़ सी हो गई । जया जैनधर्म से विमुख होने लगी । उसके मन में तो मुनि नयन्धर और सिद्धार्थ मुनि से बदले की भावना प्रज्वलित होने लगी । पुत्र मोहने उसे कितना पतित बना दिया ।

समय गुजरने लगा बालक सुकोशल दूज के चाँद सा वृद्धिगत होने लगा । सेठानी जयावती ने सुकोशल के लालन पालन में कोई कसर नहीं रखी । उसकी सुख सुविधा के सारे साधन हवेली में ही उपलब्ध कराये गये । कोमल सुकोशल ने हवेली में ही विद्याध्ययन कर ज्ञान प्राप्त किया । उन्हें विद्याध्ययन के साथ गीत संगीत, चित्रकला, व्यापार आदि की ऊँची शिक्षा प्राप्त कराई गई । तीव्र बुद्धि के किशोर सुकोशल की बुद्धि के समक्ष सभी ज्ञान-विज्ञान एवं कला नतमस्तक थे ।

किशोर सुकोशल ने यौवन में पदार्पण किया । उनके चेहरे पर यौवन और ब्रह्मचर्य की दीप्ति झिलमिलाने लगी । यौवन का बासंती निखार उनके अंग-अंग से झलकने लगा । इस यौवन में उच्छृंखलता नहीं थी पर विनय-विवेक का विकास था । उमड़ती बरसाती नदी का उफान नहीं था.. पर शरदकालीन सरिता का कल-कल नाद था । बसंत की कामुकता नहीं थी पर बसंत की शीतल मंद समीर की संगीतात्मका के स्वर प्रस्फुटित थे । यौवन ने सुकोशल को और भी नम्र बना दिया था ।

सुकोशल अपने पिता के व्यापार वाणिज्य में भी रूचि ले रहे थे। उनकी कुशाग्र बुद्धि से व्यापार में वृद्धि होने लगी थी। उनकी विचक्षणता का लोहा बड़े-बड़े व्यापारी मान रहे थे। उनकी इस योग्यता से प्रभावित होकर अयोध्या नरेश ने उन्हें अल्पायु में ही सेठ सिद्धार्थ का नगर सेठ पद प्रदान किया।

सुकोशल के रूप, बुद्धि की चर्चा देश देशांतर तक फैलने लगी। अनेक धनपति उन्हें अपना दामाद बनाने के स्वप्न देखने लगे। आये दिन जयावती के पास दूर-दूर से सेठों की कन्याओं के लिए सन्देश आने लगे। कई सेठ तो स्वयं अयोध्या आकर हवेली के मेहमान बने। हवेली का स्वागत, सुकोशल के दर्शन से वे अति प्रभावित होकर मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगे कि उनकी पुत्री का भाग्य इसी घर से बँधे।

सेठानी जयावती भी पुत्र को सर्वगुण सम्पन्न जानकर उसके यौवन के खिले रूप को देखकर मन ही मन अति प्रसन्न थीं। जैसी कि हर माँ की आकांक्षा होती है कि उसके बेटे का विवाह हो.. बहू घर में आये... यही भाव जयावती के मन में उमड़ रहे थे। उसका चिरसंचित साध्यपूर्ण करने का समय आ गया था। इन गुलाबी विचारों के बीच उसे पति-वियोग का काँटा तो चुभती ही रहता था।

सेठानी जयावती ने अपने पुत्र सुकोशल का विवाह देश के श्रेष्ठ श्रेष्ठी पुत्रियों से सम्पन्न कराया। उसने दिल खोलकर विवाह में द्रव्य का व्यय किया। चार दिन तक सारे नगर को भोज दिया गया। नगर को गरीबों को धन-वस्त्र भी दान में दिये। हवेली ही क्या पूरा नगर ही दुल्हन- सा रूप धारण कर इठला रहा था।

सुलक्षणी-रूपयौवना बतीस पत्नियों के साथ अनेक भोग भोगते हुए सुकोशल के दिन व्यतीत होने लगे। सेठानी ने हर बहू को गहनों से तो लाद ही दिया था सबको अलग-अलग विशाल सुविधा युक्त निवास एवं मौज-शौख के सभी साधन उपलब्ध करा दिये थे। वे चाहती थीं कि उनका बेटा सुकोशल रूप-यौवन की मस्ती में इतना खो जाये कि उसे संसार के दुःखों की आंच तक न लगे। उसने बहुओं को इशारे से समझा दिया था कि वे अपन पति को प्रेम पास में बराबर कस लें। बहुएँ भी अपने हाव-भाव, साज-ऋंगार, भोग-विलास, गीत-संगीत से सुकोशल को सदैव आकर्षित किए रहती थीं। दिन बड़े ही आनंद से बीत रहे थे।

जयावती को अब विश्वास हो गया था कि उसका बेटा भोगों में बराबर रम चुका है। ब्रह्मों के कह कहे उनके हृदय को गुदगुदाते रहते थे। वे प्रसन्न थीं कि उनका बेटा उनके बनाये रास्ते पर चल रहा है।



“माँ... यह नग्न व्यक्ति कौन है? उसके हाथ में सिर्फ पीछी कमण्डल है। उसके साथ कई लोग चल रहे हैं।” एक नंगे व्यक्ति को देखकर सुकोशल ने जिज्ञासा से अपनी माँ से पूछा। सुकोशल को पता ही कहाँ था कि ये जैनमुनि हैं। उसे कभी उनके दर्शन ही नहीं कराये गये थे। फिर सुकोशल ने नंगा व्यक्ति भी तो नहीं देखा था इससे पूर्व।

आज प्रातःकाल की बेला में जब रश्मिरथी आकाश मार्ग में विहार कर रहे थे, किरणों के अश्व आकाश मार्ग में बढ़ रहे थे, पक्षियों का कुल-कुल संगीत गूँज रहा था, हवा में पुष्पों की गंध लुभा रही थी, मंदिर के घंटों की आवाज में त्रिव्रता के स्वर गूँज रहे थे- उसी प्रातःकाली बेला में हवेली की छत पर सुकोशल अपनी पत्नियों और माँ के साथ इस प्रकृति के सौन्दर्य को निहार रहे थे। तभी उनकी दृष्टि नीचे राजपथ पर पड़ी जहाँ से उन्होंने इस नग्न व्यक्ति को देखा था।

जयावती ने नीचे देखा कि अरे! ये तो मेरे पति सिद्धार्थ हैं मुनि सिद्धार्थ वर्षों देश के अनेक नगरों से विहार करते हुए आज अयोध्या पधारे थे। उनके आगमन के समाचार से श्रावकों में भक्ति की भावना उमड़ पड़ी थी। नगर के लोग उन्हें स्वागत के साथ नगर में प्रवेश करा रहे थे। वे उनकी और धर्म की जयजयकार बुला रहे थे।

मुनि और फिर गृहस्थजीवन के पति मुनि सिद्धार्थ को देखकर जयावती के मन में श्रद्धा की जगह क्रोध उमड़ पड़ा। उनके संस्कारों में सोया बैरभाव जाग उठा। घृणा के भाव उनके चेहरे पर छा गये। आँखों में क्रोध का खूनी रंग दौड़ गया। विवेक खो बैठी। सत्य को ढँककर उसी उपेक्षा से बोली “बेटा! यह कोई पागल है। देखते नहीं यह भीड़ उस पागल को खदेड़ने के लिये उसके पीछे चल रही है।” जयावती ने झूठ बोलकर सुकोशल को समझाने का प्रयत्न किया।

जयावती के हृदय में रोष का बवंडर उठ रहा था। उसे सिद्धार्थ मुनि पर रोष बढ़ रहा था। आँखों में खून उतर रहा था। उसका बस चलता तो वह उन्हें नगर से

निकलवा देती। उसने सोचा कहीं बेटा मुनि की ओर आकर्षित न हो जाये - अतः उसका हाथ पकड़कर अंदर चलने का आग्रह करने लगी।

“माँ! मुझे तो ये पागल नहीं लगते। उनकी कोई हरकत ऐसी नहीं लगती। मुझे तो उनके चहरे पर तेजस्विता दिखाई दे रही है। लोग उनकी जय-जयकार कर रहे हैं। फिर आप उन्हें पागल क्यों कहती है?” सुकोशल ने हाथ छुड़ाते हुए कहा।

जयावती के ये शब्द कि ‘यह कोई पागल है’ वहाँ खड़ी सुकोशल की धाय से न रहा गया। वह जानती थी कि ये मुनिराज सिद्धार्थ हैं। सेठानी द्वेष वश ऐसा कह रही हैं। उसने कहा - “स्वामिनी आप क्या कह रही हैं? ये तो आपके स्वामी हैं। आपके पूज्य हैं, मुनि होने के नाते आपको इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। आपको इनकी वन्दना करनी चाहिए। आप इसप्रकार के झूठे आरोप से पाप कर्म को ही बाँध रही है।”

“तू चुप रह।” धाय को डाटते हुए सेठानी ने उसे झिड़क दिया। और सुकोशल का हाथ पकड़कर उसने कमरे में ले गई। अन्दर ले जाकर भी वह उसे अपने ढंग से समझाती रही। सुकोशल की माँ की बात तो सुनता रहा, पर उसका मन सन्तुष्ट नहीं हुआ।

“चलो बेटा, खाना खाओ! क्यों तुम एक पागल के लिए परेशान होते है?” जयावती ने सुकोशल से भोजनशाला में चलने का आग्रह किया।

“नहीं माँ, मैं खाना नहीं खाऊँगा। जब तक तुम मुझे उन दिगम्बर व्यक्ति के बारे में सच्चा हाल नहीं बताओगी” सुकोशल ने हठ करते हुए कहा।

“बेटे जिद्द नहीं करते। तुम बेकार ही एक नंगे के लिए परेशान हो रहे हो।” अपने रोष को दबाते हुए जयावती ने पुनः समझाते हुए कहा।

लेकिन जयावती का समझाना बेकार गया। सुकोशल ने जैसे दृढ़ निर्धार कर लिया था कि जब तक वह, सत्य का पता नहीं लगा लेता तब तक अन्न ग्रहण नहीं करेगा। और वह इसी दृढ़ता पर अड़ गया। सेठानी ने उसे हर तरह मनाया, समझाया पर वह टस से मस नहीं हुआ। अन्त में नाराज होकर जयावती कमरे से बाहर चली गई। सुकोशल की इस जिद्द ने जयावती के मन में मुनि के प्रति और भी घृणा के भाव बढ़ा दिए। उसका मन में रह-रहकर रोष बढ़ रहा था। उसने क्रोध के आवेग में आकर भले-बुरे शब्दों का प्रयोग भी किया। उसे यह भय सताने लगा कि

कहीं उसका पुत्र भी घर न छोड़ दे । क्रोध में भरी जयावती उस कमरे से पैर पटकती हुई बाहर चली गई ।

सुकोशल का मन माँ के इस व्यवहार से और भी दुःखी हो उठा । उसकी जिज्ञासा उस पुरुष के बारे में जानने के लिए और भी अधिक बलवती हो गई । धाय सुनन्दा ने सुकोशल के चहरे पर जिज्ञासा के भाव देखे । उसने सुकोशल को सारी कथा सुनाते हुए कहा - “बेटा, तुमने प्रातःकाल जिन दिगम्बर वेशधारी पुरुष को देखा है वे तुम्हारे गृहस्थ जीवन के पिता हैं । जिन्होंने इस अपार वैभव को तृणवत त्याग दिया । जो आत्म कल्याण के मार्ग पर सब कुछ छोड़कर दिगम्बर वेशधारी बने । वे अब पाद बिहारी हैं । जीवन, साधना में लगा रहे, अतः केवल एक बार निरन्तराय भोजन अंजुलि में ही लेते हैं । वे तपस्या की उस श्रेणी में पहुँच गए हैं, जहाँ शरीर का कष्ट गौण हो जाता है । आत्मध्यान में ही आनन्द रस झरने लगता है । वे जन्म-मरण, रोग, बुढ़ापा इन कष्टों से मुक्त होने की साधना से जुड़ गये हैं । वे सच्चे गुरु हैं । जो स्वयं मुक्ति मार्ग पर चल रहे हैं, वे भव्यजीवों को मुक्ति का मार्ग बतला रहे हैं ।”

“धाय माँ, फिर माताजी उन्हें अपमानजनक शब्दों से क्यों सम्बोधित कर रही हैं ?” सुकोशल ने जिज्ञासा और आश्चर्य से धाय माँ से पूछा ।

“बेटा, तुम्हारे जन्म लेते ही तुम्हारे पिता सिद्धार्थ वैराग्य धारण कर मुनि हो गए थे । तुम्हारी माँ उन्हें रोकना चाहती थीं, वे नहीं मानें, यही क्रोध-भाव उन्हें सताता रहा । इतना ही नहीं, मोह और अज्ञान के वश वे जैन धर्म और जैन गुरुओं के प्रति घृणा भाव से भर गईं । उन्हें मुनियों से चिढ़ हो गई । उनका क्रोध बैर में बदल गया । यही कारण है कि आज मुनिजी को देखकर उनका क्रोध भड़क उठा”

सुकोशल ने मौन रहकर सम्पूर्ण परिस्थिति को जाना सोचा और समझा । उसे अपनी माँ के इस व्यवहार से दुःख हुआ । गुरुओं के प्रति अपमान जनक शब्द को सुनकर उसके हृदय में चोट पहुँची । मोह के वश हम सच्चे देव-शास्त्र और गुरु के प्रति भी द्वेषभाव रखने लगते हैं इसका उसे ज्ञान हुआ । उसे मन ही मन मुनिश्री के दर्शन की तीव्र आकांक्षा हुई और उसी समय वह उनके दर्शनों के लिए चल पड़ा । सुकोशल भक्तिभाव से उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ पर मुनि सिद्धार्थ विराजमान थे । ज्यों-ज्यों वह मुनि के समीप पहुँचता जाता था, त्यों-त्यों महसूस करता था कि उसके हृदय में भक्ति की धारा बह रही है जो आँखों के माध्यम से

बहना चाहती है। उसके हृदय में वैराग्य का सूर्योदय मोह के बादलों को चीरकर उदित होने के लिए मचल रहा था। उसने मुनि श्री के चरणों में भक्ति स्वरूप वन्दना की और चरणों में बैठकर धर्म के बारे में जानने की इच्छा प्रकट की। महाराज ने चेहरे पर जिज्ञासा और श्रद्धा जानकर उसे श्रावक और गृहस्थ धर्म को समझाते हुए कहा- “हे भव्य जीव! हर गृहस्थ को अणुव्रत का पालन करते हुए क्रमशः संसार के भोगों को छोड़ते हुए आत्मोन्नति के लिए श्रमण धर्म का पालन करना चाहिए। उसे बारह व्रतों की साधना करते हुए बाईस परिषहों को प्रसन्नता से सहन करना चाहिए। मोह ही बन्धन का कारण है, यह जीव उसी से कषायों में प्रवृत्त होता है और भव-भव-भ्रमण करते हुए अनन्त दुःखों को भोगता है। यदि हम इन दुःखों से मुक्ति करते हैं तो हमें जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होना होगा। और यह मुक्ति ध्यान-तप से ही सम्भव है। यही अनन्त सुख है।”

मुनि महाराज का हर शब्द सुकोशल बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह एक-एक शब्द रचा की बूँद सा हृदय सीप में सँजो रहा था। वह महसूस कर रहा था कि उसके अंदर कोई परिवर्तन करवट ले रहा है। उसके मन में दृढ़ता का पिंड बन रहा था। उसने मन ही मन संकल्प किया कि वह जन्म-मरण से मुक्ति के अनंत सुख को पाने के मार्ग का अनुशरण करेगा। उसे गृहस्थजीवन, उसके भोग-विलास जैसे अंदर ही अंदर डँसने लगे।

कुछ समय ऐसे ही बीत गया। कब मुनिजी का प्रवचन पूरा हो गया.... उसे सुधि न रही। कुछ समय बाद सुकोशल ने अपनी आँखें खोली और बड़े ही विनम्र स्वर में बोला - “महाराज! मैं इससंसार की मोह माया को छोड़कर मुक्ति पथ पर आरूढ़ होने की आपसे आज्ञा चाहता हूँ कृपया मुझे भी वह मार्ग बतायें जिस पर आप चल रहे हैं।

“वत्स! तुम्हें अपनी माँ - कुटुम्ब परिवार से आज्ञा लेनी होगी।” मुनिश्री ने उसे समझाया। अपने मन में दृढ़ संकल्प लिए सुकोशल घर लौटे।



आज सुकोशल के चेहरे पर विचित्र सा परिवर्तन माँ जयावती एवं पत्नियों ने देखा। सभी कर्मचारी इस परिवर्तन को निहार रहे थे। धाय माँ सुनन्दा चेहरे के परिवर्तन को पढ़कर समझ रही थी।

“बेटा! तुम आज इतने अप्रसन्न क्यों हो ? क्या किसी ने कुछ कह दिया

है ? क्या स्वास्थ्य प्रतिकूल है ? क्या व्यापार में कुछ कमी आई है ? " सुकोशल के चेहरे की गंभीरता एवं मौन देखकर माँ जयवती ने प्रश्नों की बौछार ही कर दी। उसे एक अज्ञात भय भी सता रहा था।

"प्राणनाथ! आप के प्रफुल्लित चेहरे पर आज यह पतझड़ की उदासी क्यों है ? क्या हमारे किसी व्यवहार से दुखी हैं" पत्नियाँ भी प्रश्न करके उसका मुख निहार रही थीं।

"प्रिय... आपका वारिस मेरे गर्भ में पल रहा है। आप उसका ध्यान कर बतायें कि क्या बात है ?" सुभद्रा ने अनुनय किया।

"माँ! मेरी प्रिय अर्धांगिनी!!" मैं उदास भी हूँ और नहीं भी हूँ। व्यापार में घाटा भी हुआ है और नफा भी। मैं स्वस्थ भी हूँ और बीमार भी! सुकोशल ने पहले बुझाई।

"बेटा! पहेली मत बुझाओ। साफ साफ कहो कि क्या बात है ?"

"माँ मैं अभी पूज्य मुनिराज के दर्शन करके आ रहा हूँ।"

"जरूर उस ढोंगी-नंगे ने तुम्हें बरगलाया है।" जयावती का क्रोध फूँफकार उठा।

"ऐसा मत कहो माँ! वे ढोंगी नहीं ... सिद्ध पुरुष हैं। ज्ञानी- ध्यानी हैं। वे नंगे नहीं पर विषय-भोगों से ऊँचे उठ चुके हैं। मुक्तिमार्ग के पाथिक हैं। सच्चे ज्ञानी व चरित्र के भंडार हैं।" मैं उदास इसलिए हूँ कि मैं इतनी उम्र तक सत्य को जान ही नहीं पाया। भोग-विलास में ही फँसा रहा। मधुबिन्दु रूपी भोग के मोह में सच्चे धर्म को जान ही नहीं पाया। और प्रसन्न इसलिए हूँ कि आज मुझे आत्मा का ज्ञान हो गया है। सत्यासत्य की विवेक दृष्टि प्राप्त हुई है। शेषजीवन में आत्मसाधना का अवसर मिलेगा यही मेरी प्रसन्नता का कारण है। अभी तक भोगों का व्यापार किया तो वास्तव में घाटे का ही सौदा रहा। अब योग का आत्म व्यापार कर नफा कमाऊँगा। मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर समृद्ध बनूँगा। माँ! मैं बीमार हूँ क्योंकि सदा काम की मार से पीड़ित रहा। और अब पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करूँगा क्योंकि अब मुझे

धर्मोपधि की प्राप्ति हुई है।

प्रिय सुभद्रा! तुम्हारे गर्भ में शिशु पल रहा है। यह मेरी मुक्ति का ही संकेत है। बालक का मोह मुझे बाँध नहीं सकता। उसने तो मुझे स्वतंत्रता का संकेत दिया है। मैं संतान के अभाव में शायद इस गृहस्थजीवन में अटका रहता- अब उस शल्य से भी मुक्त हुआ।

मैं अपने गर्भस्थ शिशु को अपने सेठ का पद प्रदान करता हूँ और स्वयं को इस श्रेष्ठीपद से मुक्त करता हूँ। कहते-कहते सुकोशल अपने बहुमूल्य आभूषण और वस्त्रों का त्याग करने लगे।

जयावती, सुभद्रा एवं अन्य पत्नियाँ, हवेली के कर्मचारी सभी रूदन करने लगे। पर, आँसुओं की धारा उन्हें प्रभावित न कर सकी।

“बेटा! यह पथ बड़ा कठिन है। तुम्हारी कोमल देह वर्षा, आतप व शांति कैसे सहेगी? नंगे पाँव छिल जायेंगे। भूख कैसे सहन करोगे। भूमि शयन यह शरीर कैसे झेलेगा?” माँ ने रोते हुए मुनि को पड़ने वाले कष्टों का भय दिखाया।

“माँ! जन्म-मरण, बुढ़ापा, रोग, से बड़ा कष्ट क्या होगा, जिसे हम जन्म जन्मांतर से भोग रहे हैं। माँ जन्मजन्मान्तरों से भी कभी यह भूख मिट सकी है? शरीर का सुख तो इस पुद्गल का सुख है। मुझे अब इस नष्ट होने वाले मरण-धर्मा शरीर से कोई मोह नहीं। जब मैं शरीर से मोह ही नहीं रखूँगा - फिर कष्ट क्या होगा?” कहकर सुकोशल घर की माया को तृणवत त्याग कर उस उद्यान की ओर चले जहाँ मुनि सिद्धार्थ रूके हुए थे।

सारे नगर में चर्चा वायुवेग सी फैल गई। जिसने सुना उसने दाँतों तले ऊँगली दबा ली। सभी परिजन-पुरजन सभी सुकोशल के नए वेश को देखने उमड़ पड़े। सबने देखा कल का राजकुमार आज का मुनिवेश धारण कर अधिक तेजस्वी लग रहा है। नासाग्र दृष्टि से मानों वह निज के स्वरूप को ही परख रहा हो।

पुत्र के इस तरह योग धारण करने से जयावती मानों क्रोध और घृणा से पागल हो उठी। वह धर्म की महिमा को समझने के बजाय उससे और भी द्वेष करने

लगी। पति वियोग को तो वह इस आशा से सहन कर पाई थी कि पुत्र का मुँह देखकर जी लेगी। पर, युवास्था में ही पुत्र का इस तरह गृहत्यागना उसे असह्य लगा सुकोशल ने गृहत्याग किया। वह पागल सी हो उठी। वह दुख और आर्तता के कारण उसने खाना-पीना तक छोड़ दिया। चौबीस घंटों उसे पुत्र की याद सताती। वह जब तक जीवित रही पुत्र के वियोग में दुखी रही। चिन्ता और दुख से वह आर्तध्यान में ही मृत्यु की शैय्या पर चिरनिद्रा में सो गई। अंतिम समय भी उसका चित्त धर्म की ओर नहीं मुड़ा। बुढ़ापा तो बिगाड़ा ही। मृत्यु भी बिगड़ गई।



मगध के मौदगत पर्वत की कंदरा में एक व्याघ्री अपने तीन बच्चों के साथ निवास करती थी। व्याघ्री अपने बच्चों के साथ भोजन के लिए शिकार की तलाश में घूम रही थी। घने जंगल में वह शिकार की खोज में विचरण कर रही थी कि उसे मनुष्य-गंध ने आकर्षित किया। उस गंध का अनुसरण करते हुए वह उस ओर चली। उसने देखा दूर स्वच्छ शिला पर दो मनुष्य देह नगनावस्था में बैठे हैं।

ये दो नग्न देह थे मुनि सिद्धार्थ और मुनि सुकोशल के। दोनों भ्रमण करते हुए, विहार करते हुए इसी जंगल से गुजर रहे थे। संध्या हो जाने से आगे जाना वर्ज्य होने से वे वहीं स्वच्छ शिला पर सामायिक में ध्यानस्थ हो गये थे। ध्यान में वे देह से सर्वथा मुक्त आत्मा में लीन हो गये थे। देह से देहातीत बन गये थे।

व्याघ्री और उसके बच्चे दोनों मुनिराजों पर झपट पड़े। उनके शरीर को नोंच-नोंचकर खाने लगे। मुनिद्वय के शरीर से रक्त की धारा बह चली। शरीर से माँस के लोथड़े गिरने लगे। शरीर क्षत-विक्षत हो रहा था। इधर शरीर नष्ट हो रहा था- उधर दोनों मुनि शरीर के मोह से सर्वथा मुक्त आत्मा में सर्वथा लीन हो गये थे। परीपह को कर्मक्षय का अवसर मानकर निर्लेपभाव से सहन कर रहे थे। मुनि सिद्धार्थ देह को त्याग कर सर्वार्थ सिद्धि में देवत्व पा चुके थे। व्याघ्री तो अब लाश को ही चींथ रही थी।

सुकोशल मुनि भी अपना संबंध परमात्मा से जोड़ चुके थे।

“अरे! यह क्या?” सुकोशल मुनि का भक्षण करते समय उसने मुनि के शरीर के लक्षण देखे.. और उसे जाति स्मरण हो आया।

“अरे! ये तो मेरा पूर्व भव का पुत्र सुकोशल है। मैंने अपने ही बेटे का भक्षण कर लिया? जिस बेटे को मैंने जी-जान से चाहा था, जिसके लिए मैंने अपनी जानतक न्यौछावर कर दी। उसी का भक्षण कर रही हूँ। जिसकी छोटी से वेदना, मुझे पीड़ा देती थी - आज उसी की मौत का कारण बनी। मैं सचमुच डायन सिद्ध हुई” इसप्रकार पश्चाताप करते हुए उसे अपनी पूर्वजन्म की मृत्यु का ध्यान हो आया। उसे स्मरण हुआ कि पुत्र मोह के कारण वह आर्तभावों को धारण कर मरी थी। उसने उसीसमय यह कुसंकल्प किया था कि वह पुत्र को छीनने वाले पति से किसी भी जन्म में बदला लूँगी। यह कुध्यान उस पशुयोनि में ले आया। अरे! कहाँ मैं नगर की धन सम्पन्न सेठानी जयावती और कहाँ इस जंगल की हिंसक व्याध्री। सचमुच ये मेरा दुर्भाग्य है। मैंने अपने पति को खा कर महान पाप का कर्म किया है। अरे! वे तो सच्चे जैन धर्म के अनुयायी थे। आत्मोद्धार के लिए ही घर सम्पत्ति का त्याग किया था। मैं उनकी अर्धांगिनी होकर ही उनकी दुश्मन बन गई थी। यह सब मेरे अशुभ कार्यों का ही फल था। मैं मोहांध में अंधी सत्य को न परख पाई। पति तो पति प्रिय पुत्र की भी जन्मदात्री ही उसकी भक्षिका बन गई।”

व्याध्री को संसार से वैराग्य हो गया। वह पथ भूली पुनः सत्य पर लौटी। पर बड़ी देर हो चुकी थी। पति और पुत्र दोनों को खाकर - खोकर।

व्याध्री की आँखों से जल धारा की गंगा बह चली। लगता था अंतर के पाप धुल रह नयन जल बनकर बाहर निकल रहे हैं। उसी समय वहीं समाधि मरण धारण कर लिया। वह सन्यासिनी ही बन गई। उसे अब जैसे अपने तीनों बच्चों से कोई मोह ही नहीं थी। वह आँखे बन्द किए प्रभु ध्यान में लीन हो गई थी। व्याध्री के तीनों बच्चे माँ के चारों ओर चक्कर काट रहे थे, पर वह देह से मानो मुक्त हो गई थी। कई दिन गुजर गए थे, उसने अन्न, पानी का सर्वथा त्याग किया। समाधि मरण का स्वीकार कर धर्म ध्यान करती हुई, अपने पापकर्मों का क्षयकर स्वर्ग की प्राप्ति की।

सुकोशल ने अन्तिम समय उपसर्ग विजयी बनकर सर्वार्थ सिद्धि में देव बनकर सुखों को प्राप्त किया।

भट्ट अकलंक देव

मान्यखेट नगर के उद्यान में मुनि श्री चित्रगुप्त विराजमान थे। लोग उनके दर्शन प्रवचन से धन्यता का अनुभव कर रहे थे। इन्हीं महाराज के दर्शन करने राज्य के मन्त्री पुरूषोत्तम अपनी पत्नी पद्मा एवं पुत्र अकलंक और निकलंक के साथ आए। महाराज को वन्दन कर, आशीर्वाद प्राप्त किया। और धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त करने लगे। अष्टाह्निका पर्व के शुभ दिन चल रहे थे। महाराज श्री अष्टाह्निका पर्व के महत्त्व को समझा रहे थे। और श्रावकों को व्रत नियम के महत्त्व से अवगत करा रहे थे। महाराज ने पंच महाव्रतों के पालन और उससे प्राप्त उपलब्धियों की महत्ता समझाते हुए ब्रह्मचर्य व्रत की सविस्तार चर्चा की। शीलव्रत मानव को कितना महान और दृढ़, तेजस्वी और शक्तिशाली बनाता है उसके अनेक उदाहरण दिए। ब्रह्मचर्य मनुष्य को भोग-विलासों से बचाता है। चरित्र निष्ठ बनाता है, और इसकी साधना करते हुए, व्यक्ति ब्रह्म अर्थात् आत्मा में स्थिर होने लगता है। ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ व्रत है। मुनि महाराज ने सीता, सुदर्शन शेट, अन्जना, सती मनोरमा जैसे ब्रह्मचर्य के पालकों के उदाहरण देकर उसकी महत्ता और उपलब्धि को समझाया।

“महाराज ने उनके मस्तक पर पीछी रखते हुए व्रत का संकल्प कराया। मन्त्री के साथ उनके दो बेटे अकलंक और निकलंक जो किशोर वय के थे, उन्होंने भी जिज्ञासा वश माता और पिता का अनुशरण करते हुए महाराज श्री से ब्रह्मचर्य व्रत प्राप्त किए। मन्त्री और उनकी पत्नी बच्चों के इस अनुकरण पर प्रसन्न थे और हंस भी रहे थे कि ये बालक ब्रह्मचर्य का मतलब ही नहीं समझते मात्र हम लोगों की देखा-देखी व्रत ग्रहण कर रहे हैं। पर उन्हें संतोष था कि उनके बेटे धर्मपथ के अनुयायी बन रहे हैं। वे चरित्रवान बनेंगे। यह बात उन्हें रूचिकर लगी।”

अकलंक और निकलंक बड़े ही मेधावी छात्र छे। दोनों ने मन लगाकर विद्याध्ययन किया। उन्होंने जैन धर्म और दर्शन के साथ व्यावहारिक विद्याओं का अध्ययन किया। वे षट्दर्शन में पारंगत हुए। उनके बुद्धि-कौशल और रूप-सौंदर्य

की चर्चा दूर-दूर के प्रदेशों तक फैलने लगी। अनेक राज्य के मंत्री और श्रेष्ठी अपनी कन्याओं के विवाह के लिए उनके यहाँ आने लगे। पुत्रों को यौवन सम्पन्न और गुण सम्पन्न जानकर मन्त्री पुरूषोत्तम और पद्मावती ने पुत्रों के विवाह करने की तैयारी शुरू कर दी। वे दोनों अपने पुत्रों के विवाह करके गुणवती बहुओं को लाने की कल्पना से आनन्दित हो उठे। पद्मावती का तो मन मयूर नृत्य करने लगा। अनेक कन्याओं को देखने परखने का कार्य आरम्भ हो चुका था।

“भइया अकलंक! सुना तुमने ? पूज्य पिताजी अपने विवाह की तैयारीयों कर रहे हैं।” निकलंक ने आश्चर्य से अकलंक को कहा। हाँ मैंने भी सुना है! और मुझे भी आश्चर्य है। क्या पिताजी भूल गए कि हम लोगों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है हमारे विवाह करने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता।” अकलंक ने भी अपनी बात कही। “भइया’ क्यों न हम चलकर पिताजी से सब कुछ स्पष्ट रूप से कह दें। यदि वे कहीं वचन दे देंगे तो हम और व सभी धर्मसंकट में पड़ जाएंगे। पिताजी को वचन तोड़ने का दुःख होगा। और हम इसका कारण बनेंगे।” निकलंक ने अपनी राय व्यक्त की।

“सच कह रहे हो, अकलंक ! चलो हम अभी पिताजी को सब कुछ बताकर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा से अवगत करा दें।”

अकलंक और निकलंक दोनों पिताजी के कक्ष में पहुँचे। विनयपूर्वक उनके चरण स्पर्श करके खड़े रहे। मन्त्री ने पुत्रों को आशीर्वाद दिया और बैठने का संकेत किया, उसी समय पद्मावती भी वहीं आ गई। दोनों बालकों ने माँ के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद प्राप्त किया। पद्मावती ने पति और पुत्रों को बैठा देखकर यही अनुमान लगाया कि यह बैठक अकलंक और निकलंक के विवाह के सम्बन्ध में ही होगी। उसके मन में हर्ष उमड़ रहा था।

“बोलो बेटे, क्या कहना चाहते हो ?” पुरूषोत्तम ने दोनों पुत्रों के चहरे के जिज्ञासा भाव को पढ़ते हुए पूछा। “पिताजी.....।” कुछ अस्पष्ट शब्दों में अकलंक बुदबुदाये।

“हाँ-हाँ कहो, शर्माओ मत। हम तुम्हारा विवाह तुम्हारी अनुमति से करेंगे। यदि तुम्हारी विशेष इच्छा हो तो कहो।” पुरूषोत्तम ने यह समझकर कि बेटे

विवाह की बात करने आए हैं। उन्हें प्रोत्साहित करते हुए पूछा।

“पिताजी, विवाह की बात नहीं है।”

“फिर क्या बात है, बेटा?” पुरुषोत्तम और पद्मावती के मुँह से एक साथ ये शब्द फूट पड़े।

“पिताजी, हम विवाह न कर सकते हैं और न करना चाहते हैं।”

“क्यों ? ” आश्चर्य से पति-पत्नी ने पूछा।

“पिताजी, आप को स्मरण होगा कि आप का ही साथ कुछ वर्षों पूर्व अष्टाह्निका पर्व में हमने पूज्य मुनिश्री चित्रगुप्त जी से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था, इसी कारण हम विवाह नहीं करेंगे।” निर्भीकता से निकलंक ने अपनी भावना व्यक्त की। अकलंक ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए। क्षणभर के लिए तो पुरुषोत्तम और पद्मावती सन्नटे में आ गए।

“बेटा, वह तो सहज हंसी थी।” माँ ने दुःखी स्वर में कहा।

“बेटा, वह व्रत तो हमने आठ दिन के लिए ही लिया था।” पुरुषोत्तम ने समझाने का प्रयत्न किया।

“लेकिन पिताजी जब हम व्रत याचना कर रहे थे तब न हमने समय मर्यादा की बात कही थी और न मुनि महाराज ने हमें कुछ दिनों का व्रत दिया था। हम दोनों भाईयों ने तो आजीवन व्रत का संकल्प किया था। अकलंक ने अपने मन के निश्चय को दोहराया।”

“बेटा, बचपन के ये व्रत एक बालमन की भावुकता से ग्रहण किए जाते हैं, जो तुमने हमारे साथ देखा देखी लिए थे। और हमने भी तुम्हारी बाल जिज्ञासा को जानकर सहज हंसी में तुम्हारा मन रखने के लिए व्रत दिलवा दिए थे। और फिर वे व्रत आठ दिन के लिए थे।”

“पिताजी, पहली बात तो समय की कोई स्पष्टता किसी ने नहीं की थी। दूसरे व्रत जैसी गंभीर बात हंसी मजाक नहीं हो सकती। और, फिर जैन साधु के समक्ष लिए गए व्रत को तोड़ना धर्म की हंसी उड़ाना है। पिताजी! हमने व्रत पूरी गंभीरता से ग्रहण किए हैं। हम किसी भी परिस्थिति में, किसी भी कीमत पर उसे तोड़ नहीं सकते। हम दोनों भाई जीवन भर इसका पालन करेंगे। आप हमारे विवाह का संकल्प छोड़ दें।” निकलंक ने अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा व्यक्त की।

“पिताजी, भइया सच कह रहे हैं। हम दोनों आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का

पालन करते हुए जैन धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन करके धर्म की सेवा करेंगे।” अकलंक ने भी अपनी दृढ़ भावना व्यक्त की ।

दोनों भाई अपने दृढ़ विचार व्यक्त कर, माँ बाप को प्रणाम कर कक्ष से बाहर चले गए । पुरुषोत्तम और पद्मावती टूटे दिल और फटी आँखों से बेटों का जाना देखते रहे ।

दोनों भाईयों ने घर गृहस्थी के कार्य से अपने मन को शास्त्रों के अध्ययन में लगाया । तीक्ष्ण बुद्धि और सच्ची लगन के कारण चन्द दिनों में ही वे दर्शन शास्त्र के महान पण्डित बन गए । जैन धर्म के शास्त्रों का उन्होंने पूर्णरूपेण अध्ययन किया, और अन्य दर्शनों का ज्ञान प्राप्त किया ।



“भइया ! क्यों हम न बौद्ध धर्म का पूर्ण अध्ययन कर उसमें पारंगत होकर उसके अवैज्ञानिक तत्वों को प्रकाश में लाए ।” निकलंक ने अकलंक से मशवरा किया ।

“लेकिन यह कैसे सम्भव होगा ? तुम तो जानते हो कि इस समय पूरे भारत वर्ष पर बौद्धों का अधिपत्य छाया हुआ है । शासक और प्रजा सभी उसके समर्थक हैं । जैन धर्म के वे विरोधी हैं । फिर उनके स्तूपों ,मठों में जाकर विद्या प्राप्त करना अति कठिन है । वहाँ कड़ी परीक्षा के बाद ही अध्ययन के लिए प्रवेश दिया जाता है । वे आजकल असहिष्णु और अनुदार बन गए । अतः हमारा प्रवेश पाना कठिन ही नहीं असंभव है ।” अकलंक ने परिस्थिति का विश्लेषण किया ।

“क्यों न हम वेश बदल कर निरामूर्ख अशिक्षित बनकर वहाँ प्रवेश प्राप्त करें ?” निकलंक ने सलाह दी ।

दोनों भाईयों ने यही उपयुक्त समझा और अनपढ़ की भांति बौद्ध पाठशाला में प्रवेश प्राप्त कर लिया । वे बाह्य व्यवहार में पूर्ण बौद्ध सा आचरण करते रहे और अंतरंग में जैन धर्म के ही आस्थावान बने रहे । दोनों ने मन लगाकर बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया । दोनों भाईयों को यह वरदान था कि अकलंक यदि किसी बात को एक बार ही सुन लेते या पढ़ लेते तो उन्हें पूरी तरह याद हो जाता और निकलंक को वही ज्ञान दो बार के सुनने या पढ़ने से याद रहता । उनके इस स्मरण ज्ञान से उन्हें एक संस्थ और दो संस्थ की पदवियों से विभूषित किया गया । वे इस तरह छद्मवेश धारण किए रहे कि अन्य किसी साथी छात्र को मालूम ही नहीं हो

सका। कि वे बौद्ध नहीं है। दोनों भाईयों ने बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन कर उसकी कमजोरियाँ और दर्शन की विकृतियों को जान लिया।

उनकी विद्या और ज्ञान ने उन्हें एक बहुत बड़े संकट में डाल दिया। एक दिन गुरुजी प्रसंग वश जैनधर्म के सप्तभंगी न्याय के विषय में पढ़ा रहे थे। प्रकरण में कुछ अशुद्धि होने के कारण गुरुजी स्वयं समझ नहीं पा रहे थे। अतः विद्यार्थियों को समझाने में असमर्थ थे। अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए वे उठ कर कमरे से बाहर चले गए। इस बीच अकलंक ने गुरुजी की अनुपस्थिति में चुपचाप वह पाठ शुद्ध कर दिया। गुरुजी ने आकर उस शुद्ध पाठ को देखा और सप्तभंगी न्याय की सारी बातें स्पष्ट रूप से समझकर विद्यार्थियों को भी समझायी। गुरुजी के मन में इस शुद्ध पाठ को देखकर यह शंका उत्पन्न हुई कि अवश्य इन विद्यार्थियों में कोई छद्मवेशी जैन दर्शन का ज्ञाता है। वह हमारे दर्शन की कमजोरी जानकर निश्चित रूप से बौद्ध धर्म की हानि करेगा। उनके मन में यह कुविचार आया कि ऐसे गुप्त शत्रु का नाश करना ही श्रेयष्कर है।

“कौन विद्यार्थी है जिसने यह पाठ शुद्ध किया है? सच-सच बयान करो।” आचार्य ने सभी विद्यार्थियों को इष्टदेव की शपथ देकर जानना चाहा। सभी विद्यार्थी मौन रहे।

“लो यह जिनमूर्ति तुम्हारे समक्ष है। इसे लांघकर सचसच बताओ कि यह पाठ शुद्ध किसने की थी।” जब शपथ का कोई प्रभाव न पड़ा तब आचार्य ने जिन प्रतिमा को लांघने का उपाय सोचा। वे जानते थे कि जैन कभी भी प्रतिमा को लांघेगा नहीं। इन दोनों के अतिरिक्त शेष सभी विद्यार्थी प्रतिमा के ऊपर से निकल गए। दोनों भाईयों के मन में कठिन समस्या थी। यदि वे मूर्ति न लांघते तो प्राणों का भय था और यदि लांघते हैं तो पाप कर्म को बाधते हैं। परन्तु जैन धर्म की सेवा और उसके सत्य से दुनिया को परिचित कराने के लिए जीना आवश्यक था। दोनों भाईयों ने आँखों ही आँखों में मानो एक दूसरे के संकल्प को पढ़ लिया। बुद्धिमान अकलंक ने अपनी शीघ्र बुद्धि से मार्ग खोज लिया। उन्होंने एक पतला सूत प्रतिमा पर डाल कर उसे परिगृही मान, मन ही मन पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए झपट कर मूर्ति को लाँघ गए। यह कार्य उन्होंने इतनी तीव्रता से किया कि मूर्ति पर सूत डालना कोई नहीं देख पाया।

गुरुजी को इस उपाय में भी जब सफलता नहीं मिली तो उनका आन्तरिक

क्रोध और भी बढ़ गया ।

“देखो ,सभी विद्यार्थियों के सिरहाने कांसे के बर्तन इस तरह से रखना कि किसी को पता न चले । और जब सभी विद्यार्थी पूर्णरूप से निद्राधीन हो जाएँ तब एकाएक जोर से इन बर्तनों को पछाड़ना ।” आचार्य ने अपने एक गुप्तचर से सारी बात समझाते हुए नई चाल का सहारा लिया । आचार्य यह मानते थे कि रात्रि को जब अनायास भयानक शब्द होगा । उस समय घबराहट में निश्चित रूप से हर विद्यार्थी अपने अपने इष्टदेव का स्मरण करेगा ।

ऐसा ही षड्यन्त्र किया गया । एकाएक रात को जब सभी गाढ़ निद्रा में सो रहे थे ,एक भयानक शब्द हुआ । एकाएक इस विस्फोटक गूँज को सुनकर, घबड़ाकर ,हड़बड़ाहट में सभी ने अपने इष्ट देव का स्मरण किया । आचार्य का जासूस विद्यार्थियों के मुँह से निकल रहे स्मरण को ध्यान से सुन रहा था । उसने देखा कि सभी विद्यार्थियों के मुख से “बुद्धम् शरणम् गच्छामि ” की ध्वनि निकल रही है और इन दो विद्यार्थियों के मुख से “गमो अरिहन्ताणम् ” की ध्वनि निकल रही है । अकलंक और निकलंक इस हड़बड़ाहट में यह भूल गये कि वे वहाँ छदम् वेशी बौद्ध बनकर रह रहे हैं । स्वाभाविक भी था अनायास आए हुए संकट में व्यक्ति को अपना इष्टदेव ही याद आता है । दोनों भाईयों की यह भूल उनके कष्ट का कारण बनी ।

“गुरूजी ये दोनों भाई जैन धर्म के नमस्कार मन्त्र का उच्चारण कर रहे थे।” दोनों भाईयों को पकड़कर आचार्य के सामने प्रस्तुत करते हुए जासूस ने कहा ।

“बोलो ,दुष्टों तुम जैनधर्म के अनुयायी हो या नहीं ।” आचार्य ने क्रोध से जलते हुए दोनों भाईयों से पूछा । अकलंक और निकलंक सिर नीचा किए हुए खड़े रहे । उनके मौन ने सत्य का स्वीकार किया और आचार्य की क्रोधाग्नि को और भी भड़का दिया ।

“इन्हें कारागार में बन्द कर दो । इन धूर्तों को आज ही आधी रात के पश्चात प्राण दण्ड दिया जाएगा ।” आचार्य ने द्वेष और क्रोध से यह आज्ञा सुनाई । दोनों भाईयों को जेल में डाल दिया गया और कड़ी सुरक्षा लगा दी गई ।



“भइया अकलंक हम लोगो का आजतक का सारा प्रयत्न निरर्थक हो गया। हमने धर्म की रक्षा के लिए झूठी सौगन्ध भी खाई। मूर्ति को लाधने का पाप भी किया। पर आज सब नष्ट हो गया। हम अपने ध्येय में सफल न हो सके। न तो धर्म की सेवा कर सके”। हाँ, जान से हाथ जरूर धो रहे हैं।” निकलंक ने अकलंक के सामने रो-रो कर अपने हृदय की वेदना व्यक्त की।

“भइया निकलंक रोने धोने से क्या होगा ? यह तो सारा अपने ही पूर्वजन्मों का फल है। हमें इस समय पंचपरमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए। माँ सरस्वती का स्मरण करना चाहिए। हमने सौगन्ध खाई, प्रतिमा को लाँघा उसमें हमारा निजी स्वार्थ नहीं था। हमारा उद्देश्य तो सत्य स्वरूप जैन धर्म का प्रचार करना ही था।” अकलंक ने भाई को धैर्य बँधाते हुए समझाया।

दोनों भाई काल कोठरी में चिन्तामग्न टहल रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि पहरेदार मीठी नींद के वशीभूत हो गया है। शायद उसने यह सोचा हो कि लड़के हैं, कहां भाग जाएंगे ?

सुरक्षा कर्मचारी को निद्राधीन देखकर अकलंक के मन में यह विचार कौधा। क्यों न वे इसका लाभ लेकर भागकर प्राणों की रक्षा करें। दोनों भाईयों ने गुपसुप भागने का निश्चय किया और उस काल कोठरी से बाहर निकलकर भागने में सफल भी हो गए।

बौद्ध गुरु ने अर्धरात्रि के बाद दोनों भाईयों को कारागृह से लाकर वध करने का आदेश दिया। अनेक रक्षक और उनके विद्यार्थी इस तमाशे को देखने के लिए कारागृह की ओर चल पड़े। लोगों की आहट सुनकर पहरेदार हड़बड़ाकर सावधान हो गया।

“सिपाही ! जाओ दोनों पापियों को ले आओ। उन्हें वधस्तम्भ पर ले चलो।” आचार्य ने आदेशात्मक स्वर में आज्ञा दी।

सैनिक आदेश पालन करने हेतु उस कोठरी में गया, जहाँ दोनों भाईयों को रखा गया था। परन्तु उसने देखा कि कोठरी में तो कोई नहीं है। उसने घबड़ाकर कोना-कोना देखा। परन्तु वहाँ किसी का नामोनिशान नहीं था। सैनिक घबड़ाता हुआ, भय के मारे कांपता हुआ, आचार्य के सामने खड़ा हो गया। उसे अकेला आया देखकर और चेहरे पर बदहवासी देखकर आचार्य का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने कड़कती हुई आवाज में पूछा - “क्यों सैनिक, उन दोनों भाईयों को क्यों

नहीं लाए ? ”

“ महाराज वे कोठरी में नहीं हैं । ”

इतना सुनते ही आचार्य का क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ गया । उन्होंने रक्षक को इस शक में बन्दी बना लिया कि इसी ने उन दोनों को भगाने में सहायता की है ।

कैदी भाग गए - कैदी भाग गए का शोर पूरे वातावरण में गूँजने लगा । हल्ला-गुल्ला होने लगा । तुरन्त उन्हें जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाने के आदेश दिए गए । चारों दिशाओं में सैनिकों को दौड़ाया गया । सैनिक जंगल, पहाड़ सभी स्थानों पर छान बीन करने लगे । छिपने योग्य सभी स्थानों को ढूढ़ डाला गया । दोनों भाई जान हथेली पर लेकर जंगल की दुर्गम राहों पर लहू-लूहान होकर भागे जा रहे थे । सुबह होने की थी । अभी तक सैनिक उन्हें पकड़ नहीं पाये थे । इसलिए उनका क्रोध और भी बढ़ा रहा था । उनके घोड़े जंगल को रौंध रहे थे । लगता था कुछ घुड़सवारों की नजर में दौड़ते हुए ये दोनों बिन्दु नजर पड़ गए थे । उधर दोनों भाईयों ने दौड़ते-दौड़ते जब पीछे देखा और उड़ती हुई धूल, घोड़ों के टापों की आवाज सुनी तो वे समझ गए कि अब मृत्यु निश्चित है ।

“ भइया अकलंक! देखो उड़ती हुई धूल और टापों की आवाज हमारी मृत्यु का संदेश लेकर आ रही है । लगता है कि हम जैन धर्म की सेवा करने से पहले ही मौत के मुख में समा जायेंगे । ” निकलंक ने परिस्थिति को जानकर अपनी वेदना व्यक्त की ।

“ भाई निकलंक ! तुम सत्य कह रहे हो । मुझे मृत्यु का भय नहीं है । लेकिन अफसोस यही रहेगा कि हम लोग अपनी विद्या का उपयोग जैनधर्म के विकास में नहीं लगा सके , और अब हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है । ” अकलंक ने अफसोस के साथ कहा । उपाय है । भइया देखो सामने यह तालाब है जो कमल पत्रों से लगभग आच्छदित है । तुम इस तालाब में छिपकर जान बचाओ । निकलंक के मन में विचारों की बिजली कौंधी ।

“कैसी बातें करते हो निकलंक मैं अपने छोटे भाई को मौत के मुहँ में धकेलकर अपनी रक्षा करूँ तो मेरे जीवन को धिक्कार है । अब तो जीना और मरना साथ ही होगा । ”

“ ऐसी बात नहीं भइया तुम्हें अपनी जान अपने लिए नहीं जैन धर्म की

सेवा के लिए बचानी है । भइया तुम्हें यह वरदान भी प्राप्त है कि तुम एक संस्थ हो विद्वान हो । यदि तुम जीवित रहोगे तो अपनी इस स्मरण शक्ति और विद्वता से एक दिन जैन धर्म का डंका बजाओगे । ”

“लेकिन ,मैं ऐसा नहीं करूँगा । तुम्हें छोड़कर जीने से तो मुझे मरना अधिक पसन्द है । ”

“जिद् मत करो भइया । समय चर्चा का नहीं है । भावुक होने का नहीं है । तुम जानते हो कि मैं तुम्हारी तरह किसी भी ज्ञान को एक बार में याद नहीं कर पाता, और तुम जितना विद्वान भी नहीं हूँ । मुझे अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं यदि तुम कभी भी जैन धर्म की ध्वजा फहराओं तो मुझे मृत्यु के बाद यह संतोष रहेगा कि मेरे भाई ने जैनधर्म का झण्डा फहराया है । ”

“लेकिन । ” अकलंक ने कुछ कहना चाहा ।

“लेकिन-वेकिन कुछ नहीं । तुम्हें मेरी सौगन्ध है, जैनधर्म की सैगन्ध है ! जल्दी करो तालाब में छिप जाओ । देखो दुष्ट लोग करीब पहुंचने ही वाले हैं । ’ निकलंक ने अकलंक को तालाब की ओर धकेलते हुए कहा ।

अकलंक को निकलंक की बात माननी पड़ी और वह तालाब के अन्दर , कमलपत्रों के बीच पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए पानी में छिप गया । छिपने से पूर्व उसने निकलंक को गले से लगाया । ओठों पर मौन था , पर आँखे बरस रही थी । भाई को मौत की शरण में छोड़कर छिपना उसके लिए मौत से अधिक बदतर लग रहा था । परन्तु अन्य कोई उपाय भी नहीं था । उसने अपने मन को मनाते हुए सोचा था कि “ प्रभु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवित रहूँगा तो सिर्फ जैन धर्म के प्रचार के लिए । ”

निकलंक ,अकलंक को तालाब में प्रवेश करते देख एक क्षण के लिए आसन्न मौत को भी भूल गया । यह खुशी उसकी आँखों में झलक उठी कि उसका भाई अवश्य एक दिन जैनधर्म का डंका बजायेगा ।

निकलंक ने देखा कि उसके हत्यारे और निकट पहुँच रहे हैं, अतः वे और भी जोर से भागने लगे ।

“ क्यों भाई ,तुम क्यों दौड़ रहे हो । यह धूल कैसी उड़ रही है ? घुड़सवारों की घोड़ों की टापों की आवाजे सुनाई पड़ रही है । ” एक धोबी ने भागते हुए निकलंक से पूछा ।

“ भाई ये शत्रु की फौज के सिपाही हैं जो क्रूर हत्यारे हैं उन्हें रास्ते में जो मिलता है उसका वध कर देते हैं । ” निकलंक ने धोबी को मृत्यु का भय बताया । उनके मन में यह बात बिजली की तरह कौंधी थी कि “ यदि सैनिक मुझे अकेले को देखेंगे तो मुझे तो मार ही डालेंगे । अकलंक को भी जीवित नहीं छोड़ेंगे । यदि ये धोबी मेरे साथ दौड़ेगा तो सैनिक हम को अकलंक-निकलंक समझ कर मार डालेंगे । और इस तरह अकलंक बच जायेगे । ” निकलंक ने इस निर्दोष धोबी से जो असत्य कहा उसका उन्हें दुःख तो हुआ । परन्तु अकलंक को धर्म की रक्षा के लिए बचाने का इसके अलावा कोई रास्ता भी नहीं था । झूठ बोलकर धोबी की मृत्यु का पाप अपने सिर पर ओढ़कर अशुभ कर्मों के बन्ध और परिणामों को भोगने की तैयारी के साथ दौड़ते रहे । धोबी भी जान बचाने के भय से निकलंक के पीछे दौड़ने लगा । अभी वे कुछ ही दूर तक दौड़ पाए थे कि अश्वारोही सैनिकों ने इन दोनों को दबोच लिया । और निर्ममता से उन्हें मौत के घाट उतार दिया । धोबी तो कुछ समझ ही न पाया और जान से हाथ धो बैठा । निकलंक तो जैसे इस परिणाम के लिए तैयार ही थे , सैनिकों के तलवार के प्रहार के समय उनकी आँखों में अद्वितीय चमक थी और स्वर में ‘जैनधर्म की जय ’ का उद्घोष था वे धर्म के लिए आज हसते हंसते शहीद हो गए ।



रत्न संचयपुर नगर में आज बड़ी धूमधाम थी । महारानी मदन सुन्दरी ने अपनी आस्था के प्रतिरूप जिनमंदिर का निर्माण कराया था । आज जिन पूजा महोत्सव के उपलक्ष में जिनेन्द्र भगवान की यात्रा का दिन था । भक्त समुदाय उमड़ रहा था । सम्पूर्ण नगर ध्वजा पताकाओं से सजाया गया था । मधुर भजनों की संगीत ध्वनि से वातावरण गुंजित था । महारानी चाहती थी कि इस रथ यात्रा में उनके पति महाराज हिमशीतल भी सम्मिलित हों । महाराज स्वयं बौद्ध धर्म के अनुयायी थे । यद्यपि वे महारानी के जिनाराधना के कार्य में रुकावट नहीं करते थे, परन्तु उसमें हिस्सा भी नहीं लेते थे ।

“ महाराज आप जैसे भगवान बुद्ध के अनुयायी होते हुए , आपकी महारानी इतना बड़ा जूलूस निकाल कर बौद्ध धर्म का मजाक ही उड़ा रही है । आपको यह

रथ यात्रा बन्द करवा देनी चाहिए । आप जानते हैं कि महान बौद्ध धर्म के सामने जैन धर्म तुच्छ है । कोई हम से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता । " नगर में निवास कर रहे बौद्ध गुरु संगश्री ने महाराज के कान भरते हुए इस रथयात्रा को रूकवाने का आग्रह किया ।

राजा ने गुरु की बात मानते हुए ,रथ यात्रा रूकवा दी ।

" महाराज यह मैं क्या सुन रही हूँ ? आपने जिनेन्द्र भगवान की शोभा यात्रा रूकवा दी है । " रानी ने महाराज से पूछा और कारण जानना चाहा ।

"हाँ, महारानी तुम्हारी रथ यात्रा हमने स्थगित करवा दी । हम चाहते हैं कि तुम्हारा कोई जैन विद्वान या साधु जब तक हमारे धर्म गुरु संगश्री आचार्य से शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त नहीं करता ,तब तक यह रथयात्रा सम्पन्न नहीं हो सकती । "

महारानी इस शर्त को सुनकर आवाक् रह गई । वे सीधे मंदिर में विराजमान मुनि महाराज के पास पहुँची और सारी परिस्थिति का बयान करते हुए समस्या को प्रस्तुत किया । मुनि महाराज ने अपनी अल्पज्ञाता व्यक्त करते हुए शास्त्रार्थ के लिए अपनी असमर्थता व्यक्त की । रानी इस उत्तर से निराश हुई उन्हें लगा कि उनका जैन धर्म यदि परास्त हो गया तो उसका अस्तित्व ही क्या रहेगा ? जब धर्म का अस्तित्व ही नहीं रहेगा तो मेरे जीवित रहने का अर्थ ही क्या है ? इस प्रकार दुःखी रानी ने भगवान की प्रतिमा के समक्ष पंचपरमेष्ठी को साक्षी मान कर यह प्रतिज्ञा की - "जब तक मुझे धर्म का प्रभावी विद्वान ,जो शास्त्रार्थ में इस मिथ्यात्वी बौद्ध आचार्य को नहीं हरायेगा । तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी । समाधिमरण का वरण करूँगी । मैं अपने जीते जी अपने धर्म की तौहीन होते हुए नहीं देख सकती ।"

रानी आँखे बन्द किए अरिहन्त प्रभुके सामने एक चित्त होकर ध्यानस्थ हो गई । एकाएक उन्हें लगा कि एक प्रकाश पुंज उनके सामने फैल रहा है ,और जैसे उनके कानों में ये शब्द गूँजने लगे -"रानी ,तुम चिन्ता मत करो तुम्हारे हृदय में पंचपरमेष्ठी प्रभु के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति है ,वह निश्चित रूप से तुम्हारी मनोकामना पूरी करेगी । कल प्रातःकाल जैन दर्शन के उद्भव विद्वान अकलंक देव स्वयं यहां पधारेंगे । बौद्ध गुरु को शास्त्रार्थ में हरायेंगे । तुम्हारा रथोत्सव निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न होगा । "

इस दिव्य ध्वनि को सुनकर रानी को आश्चर्य हुआ । और प्रसन्नता हुई । उन्होंने अनुभव किया कि उनकी सच्ची जिन भक्ति में प्रभावित होकर किसी सम्यक् दृष्टि देव-देवी ने मेरी सहायता करने का संकल्प किया है । रानी ने भक्तिभाव से पूजन सामायिक और महल में लौटकर सेवकों को आदेश दिया कि वे चारों दिशाओं में जाएँ और अकलंक देवजी को ढूँढ़ कर सम्मान सहित ले आएँ। जैसा कि रानी ने दिव्य ध्वनि में सुना था । उसी तरह अकलंक स्वामी को अपने नगर में पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । रानी ने भक्तिभाव से उनके चरणों में वन्दना की और अश्रु भरी आँखों से दुःखी होकर रथयात्रा पर जो उपसर्ग आया है उसका हाल सुनाया । “देवी आप धैर्य धारण करें । पवित्र जैन धर्म को कोई अपमानित नहीं कर सकता और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि सच्चे शास्त्रों के आधार पर मैं इस विघ्न करने वाले धूर्त को अवश्य परास्त करूँगा । ” अकलंक देव ने रानी को धैर्य बँधाते हुए बैद्ध गुरु के पास शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति भेजने को कहा ।

अकलंक देव का पत्र उनकी स्वीकृति के साथ संगश्री के पास भेज दिया गया । पत्र की भाषा को देखकर ही संगश्री को आभास हो गया कि यह कोई साधारण विद्वान नहीं है । उसके मन में शास्त्रार्थ से पूर्व ही पराजय का भय उत्पन्न हो गया । परन्तु उसने ही शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था , अतः उसे अब शास्त्रार्थ करने के अलावा कोई मार्ग ही न था ।

महाराज हिमशीतल ने अकलंक एवं संघश्री के शास्त्रार्थ की योग्य व्यवस्था की । राजदरबारीओं , विद्वानों और आमजनता में जिज्ञासा और कुतूहल की लहर दौड़ गई , सभी की नजरे इस शास्त्रार्थ पर टिकी हुई थी क्योंकि यही निर्णायक शास्त्रार्थ था जिससे जैन धर्म या बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा प्रस्थापित होनी थी । प्रथम दिन ही अकलंक देव ने ऐसे प्रश्न किये कि संघश्री निरूत्तर हो गया । लेकिन उसने बहाना ढूँढ़ते हुए महाराज से कहा -“महाराज यह कोई साधारण प्रश्नोत्तरी का शास्त्रार्थ नहीं है । गहन सिद्धान्तों की चर्चा करनी है । मैं चाहता हूँ कि यह शास्त्रार्थ नियमित रूप से चलता रहे , और इसका निर्णय तभी हो सकेगा जब एक पक्ष पूर्णरूप से निरूत्तर हो जाएँ , ” संघश्री ने उस दिन प्रसंग टालने के लिए राजा को समझाया । अकलंक देव की स्वीकृति पाकर महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली । और दूसरे दिन शास्त्रार्थ की व्यवस्था की ।

“देवी मैं बड़े संकट में फंस गया हूँ । बौद्ध धर्म पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं । मैं अनुभव कर रहा हूँ कि अकलंक जैसे विद्वान के सामने मैं शास्त्रार्थ नहीं कर पाऊँगा और इससे बौद्ध धर्म का पराजय होगा , मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी । ” अपनी इष्ट देवी के सामने गिड़ गिड़ाते हुए संघश्री ने अपनी कमजोरी प्रकट की । अपने निवास पर वह देवी का अनुष्ठान करता रहा ।

“ संघश्री चिन्ता मत करो । मैं तुम्हें पराजित नहीं होने दूँगी । मैं तुम्हारे स्थान पर स्वयं अकलंक से शास्त्रार्थ करूँगी । परन्तु मेरी एक शर्त होगी । मैं पर्दे के पीछे बैठकर की शास्त्रार्थ करूँगी । ” देवी ने संघश्री को सांत्वना देते हुए समझाया ।

“देवी पर्दे के पीछे कैसे शास्त्रार्थ होगा ? मैं कहाँ बैटूँगा ? ” संघश्री ने अपनी दुविधा व्यक्त की ।

“तुम स्वयं महाराज से कहना कि तुम शास्त्रार्थ पर्दे के पीछे बैठकर करोगे , और यदि राजा पूछे कि इसका रहस्य क्या है तो उनसे कहना कि शास्त्रार्थ के अन्त में सब कुछ स्पष्ट कर दिया जायेगा । ” देवी ने संघश्री को मार्ग बताते हुए सब कुछ समझा दिया ।

दूसरे दिन संघश्री के इसप्रकार के कथनानुसार पर्दे की व्यवस्था कर दी और संघश्री के आह्वान करने पर देवी प्रस्तुत हुई जिसे की एक घड़े में प्रस्थापित कर दिया गया ।

शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ । और लगातार छह महीने तक अकलंक देव से संघश्री के स्थान पर देवी तारा ही शास्त्रार्थ करती रही । हार-जीत का फैसला ही नहीं हो पा रहा था । दिन प्रति दिन लोगों में जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी ।

अकलंक देव को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि इतने लम्बे समय तक संघश्री कैसे शास्त्रार्थ में टिक सका है । अकलंक देव ने ध्यान करते हुए देवी चक्रेश्वरी का ध्यान किया । देवी ने अकलंक देव को सारी परिस्थिति से अवगत कराया । और कहा “संघश्री की मदद उनकी इष्टदेवी तारा कर रही है । देवी देवताओं को यह

वरदान होता है कि वे किसी प्रश्न का उत्तर एक ही बार में दे सकते हैं । तुम उस देवी से अपने प्रश्न को पुनः दोहरा कर पूछोगे तो वह निरूत्तर हो जायेगी । और संघश्री का भाड़ा फूट जाएगा । ”

अकलंक देव आज अत्यन्त प्रसन्न थे ,उन्हें विश्वास था कि आज वे संघश्री की पोल तो खोलेंगे ही, बौद्ध धर्म के इस छल-कपट का पर्दाफाश भी करेंगे । साथ ही जैन धर्म की विजय पताका फहरायेंगे । वे इस दृढ़ निश्चय के साथ शास्त्रार्थ भवन में पहुँचे । नित्य की भाति चर्चा प्रारम्भ हुई । देवी के माध्यम से संघश्री ने प्रश्न किया ।

“ श्रीमान मैं आपके इस प्रश्न को सुन नहीं सका हूँ ,कृपया प्रश्न को पुनः दोहराएँ । ” चक्रेश्वरी के निर्देशानुसार अकलंक देव ने वैसा ही किया । देवी तारा दूसरी बार उस प्रश्न न कर सकी और मौन रह गयी । संघश्री कोई उत्तर नहीं दे सके तो पर्दा हटाया गया ,संघश्री की पराजय की घोषणा हो गयी । चारों ओर जैनधर्म का जयजयकार होने लगा । महाराज ने उठकर अकलंक देव की वन्दना की ।

“ महाराज अभी आपको मैं एक वास्तविक सत्य से परिचित कराना चाहता हूँ , वास्तव में इतना लम्बा शास्त्रार्थ संघश्री नहीं कर रहे थे ,परन्तु पर्दे के पीछे इनकी इष्टदेवी तारा ही शास्त्रार्थ कर रही थी । ”

“ यहाँ तो कोई देवी दिखाई नहीं देती ” राजा ने आश्चर्य से पूछा ।

“ अकलंक देव ने अभी बताता हूँ । ” कह कर घड़े को फोड़ दिया,जिसमें तारा देवी को छिपाया गया था । देवी घड़ा फूटते ही भागकर अदृश्य हो गई । संघश्री की पोल खुल गई । तब गुरू गंभीर वाणी में अकलंक देव ने कहा - “ महाराज और उपस्थित सज्जनों मैं पहले ही दिन संघश्री को परास्त कर देता ,लेकिन इतने लम्बे समय तक शास्त्रार्थ करने का उद्देश्य जैन धर्म के सिद्धान्तों से आपको परिचित कराना था । उसकी महत्ता को आपको समझाना था । दर्शन-ज्ञान और चारित्र की महान विभूति से युक्त जैनागम के प्रति आपको श्रद्धावान

बनाना था । और साथ ही धर्म के नाम पर लोगो को छल कपट से ठगने वाले धर्माचार्यों की सही स्थिति आप के सामने रखनी थी । ” पुनःश्च उन्होंने कहा - “बौद्ध धर्म राज्याश्रय पाने के कारण अहम से पीड़ित है । संकुचितता की दीवारों में कैद हो गया है । वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु नहीं रहा है । यहाँ तक कि वह बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने वाले जिज्ञासुओं का वध कराने में नहीं हिचकिचाता । ” अकलंक देव ने इस प्रकार अपने जीवन की कूरण घटना को भी कह सुनाया । जिसके कारण उन्हें अपने भाई को शहीद कर देना पड़ा था और स्वयं वर्षों अज्ञातवास भांग कर जैन धर्म की प्रतिष्ठा के लिए जूझते रहे थे । अकलंक देव आज सबसे अधिक प्रसन्न थे कि वे अपने उद्देश्य में सफल हो सके । यद्यपि वे अब संसार से विरक्त साधु थे, परन्तु निकलंक की शहादत ने उनकी आँखों के कोने भिगो दिये ।

महाराज और महारानी ही नहीं ,संघश्री भी अकलंक देव के चरणों में नतमस्तक था । उसे अपनी धूर्तता पर दुःख था और वह लज्जित था, लेकिन अकलंक देव ने उसे भी गले लगाकर क्षमा किया जैन धर्म की विजय के समाचार वायुवेग से पूरे शहर में फैल गए । रूके हुए रथ की घण्टियां बज उठीं । संगीत के स्वर आकाश में गूंजने लगे । मणि-रत्नों से सजे हुए रथ में भगवान की मूर्ति दमक रही थी । “जैनाद ” का उद्घोष गूंज रहा था । रथ के पीछे चारणों का यशोगान हो रहा था । और महिलाओं के मंगलगीत की ध्वनियाँ विखर रही थीं । पुष्प वर्षा हो रही थी । रथयात्रा बड़े ही गौरव से सम्पूर्ण हुई । रानी ने मुक्त हाथों से दान किया ।

इस प्रकार अपने जीवन में ,अपने धर्म की प्रतिष्ठा को प्रस्थापित होते देख, भगवान अकलंक को पूर्ण तृप्ति हुई । उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की जो आज भी हमारे मार्गदर्शक हैं ।



चितात पुत्र मुनि की कथा

“महाराज यदि आपको मेरी कन्या से पाणिग्रहण करना है तो आपको मेरी एक शर्त माननी होगी । ” यमदंड भील ने महाराज उपश्रेणिक के समक्ष पुत्री के पाणिग्रहण के लिए शर्त रखते हुए कहा ।

“ कौन सी शर्त भीलराज ? ” मुझे तुम्हारी हर शर्त मंजूर है । मुझे तुम्हारी कन्या बेहद पसन्द है । कहते हुए राजा उपश्रेणिक ने भीलराज ने यमदंड से पूछा ।

“ राजन आप राजगृह के महाराज है । मैं इस जंगल का भीलराजा आपके निवास में अन्य रानियाँ होंगी । उनकी संताने भी होगी । ”

“ हाँ हैं..... ” महाराज ने हामी भरी ।

“महाराज मेरी पुत्री भील पुत्री है । स्वाभाविक है कि आपके यहाँ उसका अन्य रानियाँ अपमान भी करें । आपके सामने वे ऐसा न भी करें पर परोक्ष रूप से वे मेरी पुत्री से मन ही मन घृणा करेगी । दूसरे, मेरी पुत्री से उत्पन्न आपकी संतान भी अन्य राजकुमारों द्वारा तिरस्कृत ही रहेगी । अतः मैं नहीं चाहता कि मेरी पुत्री और उसकी संतान जीवन भर अपमान का घूंट पिये । उसे जिन्दगी भर गुलामी का जीवन व्यतीत करना पड़े । ”

“ऐसा नहीं होगा भीलराज यमदंड । मुझ पर विश्वास करो । तुम्हारी पुत्री को वही सन्मान मिलेगा जो अन्य रानियों को प्राप्त है । अरे उससे भी अधिक सन्मान दूँगा । हाँ , आप अपनी शर्त तो कहें । ” महाराज ने आश्वासन देते हुए पूछा ।

“ महाराज यदि आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण करना चाहते हैं तो आपको मेरी पुत्री तिलकवती को पटरानी का पद देना होगा । उससे उत्पन्न संतान को ही युवराज पद पर आसीन कर, उसे ही राज्यगद्दी पर बैठाना होगा । ”

महाराज क्षणभर को सोचते रहे । पर ज्यों ही उनकी आँखें तिलकवती की आँखों से चार हुईं वे जैसे सब कुछ भूल गये । और प्रेम के आवेश में

उन्होंने यमदंड की शर्त का स्वीकार करते हुए यह वचन दे दिया कि विवाह के पश्चात् तिलकवती ही पटरानी होगी और उसका पुत्र ही राज्यका भावि महाराजा होगा।

महाराज की इस वचनबद्धता पर विश्वास कर यमदंड भील ने अपनी कन्या का विवाह उपश्रेणिक महाराज से कर दिया।

महाराज सोचने लगे कैसा संयोग वे हवाखोरी के लिए निकले थे। उनका घोड़ा बहक गया था। और लाख सम्हालनेके बाद भी इस घोर जंगल में आ गया था। रात्रि हो चुकी थी। वे मार्ग भूल गये थे। उन्होंने सामने दीपक के प्रकाश को देखकर इस ओर आये थे। उन्होंने आश्रय के लिए दरवाजा खटखटाया था।

“कौन है ? ” एक सुरीला कंठ गूंज उठा था।

“मैं हूँ एक पथ भूला मुसाफिर। ”

दरवाजा खुल गया था। दरवाजा खोलने वाली रूपांगना को देखकर मुसाफिर चित्रलिखित सा, ठगा सा खड़ा रह गया था। कन्या भी इस वृषभकंधो वाले बलिष्ठ, खूबसूरत, गौरवपूर्ण युवक को देखकर ठगी सी रह गई थी। दोनों खो गये थे एक दूसरे में। क्षण गुजर रहे थे। आँखे चार हुई थीं पर दिल की धड़कन एक हो गई थी। मन ही मन दोनों एक दूसरे को समर्पित हो गये थे। आँखें मौन स्वीकृति दे रही थीं।

“कौन है बेटे। ” एक स्वर दोनों में व्यवधान डाल गया।

चौक पड़ा मुसाफिर और चौक पड़ी षोड़सी। एक बलिष्ठ काला सा अधेड़ वय का भील इतने समय में बाहर आ चुका था। उसने जिज्ञासा और आश्चर्य से नवागंतुक के सामने देखा। कन्या घर में चली गई।

“मैं हूँ राजगृही का राजा उपश्रेणिक। घोड़े की दुष्टताने इस जंगल की भूल भूलैया में भटका दिया है। रात्रि का समय होने से एक रात्रि के विश्राम हेतु आया हूँ। क्या आश्रय मिलेगा। ” मुसाफिर ने अपना परिचय देते हुए कहा।

“क्षमा करें महाराज। मैं रात्रि के अंधेरे में आपको पहचान न सका। पधारें आपने तो यहाँ पधार कर मेरी प्रतिष्ठा ही बढ़ाई है। मैं तो चाहता हूँ कि आप कुछ दिन मेरे घर, इस वन को कृतार्थ करें।

भीलराज ने महाराज का उचित प्रबंध किया। उनकी सेवा का भार

अपनी पुत्री तिलकवती को सौपा ।

महाराज की आँखों की नींद ही गायब हो गई थी । निद्रा देवी की जगत तिलकवती बस गई थी । ऐसी ही हालत तिलकवती की थी । दोनों की रात आँखों में ही कट गई ।

दूसरे दिन वहीं महाराज के साथ भीलराज यमदंड ने अपनी जाति की प्रथा के अनुसार अपनी कन्या का पाणिग्रहण करवा दिया । अपने अनुचरों के साथ राजा का पथ दर्शन कराने हेतु भेजा ।

महाराज राजगृह में नववधू के साथ लौटे । नगर वासियों को आश्चर्य हुआ कि उनके महाराज नया विवाह करके लौटे हैं । पूरे नगर में धूमधाम की गई । पूरा नगर सजाया गया । पूरे राजकीय उत्सव के साथ विधिवत विवाह विधि सम्पन्न हुई । अन्य रानियों, दरबारियों और प्रजाजन को उत्सुकता थी उस रूपवती को निरखने की जिसने उनके राजा को बांध लिया था । अजेय को भी जीत लिया था । पर तिलकवती का सौन्दर्य देखकर लोगों की जिज्ञासा शांत हुई । भीलकन्या भी इतनी रूपसी हो सकती है ! यह कल्पना भी उन्हें नहीं थी । उन्हें लगा कि कोयले की खान में हीरा दमका है । लोग राजा की पसंद और तिलकवती के रूप की प्रशंसा करने लगे । रानियाँ प्रसन्न भी हुईं और सौतिया डाट भी आँखों में झलका । राज्य के दरबारी मंत्री गण आनेवाले कल के संघर्ष से चिन्तित भी थे ।

महाराज उपश्रेणिक ने नई दुल्हन के लिए नया महल बनवाया । उसके सुख साधन की पूरी व्यवस्था की । प्रेम में पगे महाराज ने अपने दिये गये वचन के अनुसार तिलकवती को पटरानी के पद पर विभूषित किया । वे तिलकवती के प्रेम में खो गये ।



यथा समय पटरानी तिलकवती ने पुत्र को जन्म दिया । पूरे राज्य में खुशियाँ मनाई गईं । गरीबों को मुक्त हाथों से धन दिया गया । प्रजा के हितार्थ अनेक कार्य सम्पन्न किये गये । पुत्र का नाम चिलातपुत्र रखा गया । समय के साथ चिलातपुत्र किशोरावस्था को प्राप्त हुआ । चिलातपुत्र का लालन-पालन राजघराने

में हो रहा था । पर उसमें लक्षण जंगली लोगों के जैसे ही उभर रहे थे। पढ़ने लिखने में उसका मन न लगता था । हिंसक प्रवृत्तियाँ , शिकार खेलना हंसी ठट्टे करना , आवारागर्दी में उसे विशेष रुचि हो रही थी । राजा एवं सभी मंत्रीगण चिन्तातुर थे ।

“ मंत्री जी मैं चाहता हूँ कि चिलातपुत्र को युवराज घोषित करके उसे राजकाज में लगाऊँ ताकि उसकी रुचि इस ओर मुड़े । ” महाराज ने मंत्रीजी से अपने मन का संकल्प व्यक्त किया ।

“महाराज वह कैसे होगा ? आपके अन्य ज्योष्ठ और बुद्धिमान पुत्र मौजूद हैं । वे युवराजपद के अधिकारी है । ” मंत्री ने सलाह दी ।

“मंत्रीजी मैं महारानी तिलकवती के पिताश्री यमदंडको विवाह से पूर्व वचन दे चुका था कि महारानी के गर्भ से अवतरित बालक ही युवराज पद पर आसीन किया जायेगा । मैं वचनबद्ध हूँ । मैं जानता हूँ कि प्रेमवश भावुकता मैं वह वचन दिया था । पर क्षत्रिय का वचन तो वचन होता है । मैं यह भी जानता हूँ कि ज्योष्ठ पुत्रों का अधिकार है । वे ज्ञान शास्त्र में निपुण भी हैं । मैं यह भी देख रहा हूँ कि चिलातपुत्र में राजघराने के संस्कारों के स्थान पर भील संस्कार उभर रहे हैं । पर मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ । ” कहते हुए महाराज ने अपनी वेदना व परिस्थिति से अवगत कराया ।

मंत्री विचार में पड़ा गये । वे जानते थे कि महाराज के पुत्र श्रेणिक सर्वगुण सम्पन्न हैं । वे ही सच्चे उत्तराधिकारी हैं । यह चिलातपुत्र संस्कारहीन है । राज्य की इसके कारण अवगति ही होगी । पर वे क्या कर सकते थे । राजा की वचनबद्धता को कैसे नकार सकते थे ? आखिर उन्होंने सलाह दी --“महाराज क्यों न हम राज ज्योतिषी जी से भी सलाह ले लें । ”

“ठीक है । राज ज्योतिषी बुलवाये । ”

दूसरे दिन राजज्योतिषी के आने पर महाराजने पूछा – “ज्योतिषी जी कृपया बतायें कि इस राज्य के युवराजपद पर कौन सा कुमार योग्य सिद्ध होगा ? किसके द्वारा राज्य का हित होगा ? ”

ज्योतिषीजी ने ज्योतिष के ज्ञान की दृष्टि से ग्रह नक्षत्र आदि के आधारपर कहा – “महाराज मेरा ज्ञान कहता है कि आप दो प्रयोग करें इनमें जो राजकुमार सफलता प्राप्त करे उसे ही युवराज पद प्रदान करें । ”

“ ठीक है । ऐसा ही होगा पर एक बात ध्यान रखें हमें इस प्रयोग या परीक्षण का उद्देश्य किसी को भी ज्ञात नहीं होने देना है । इसे बस एक परीक्षण ही बना रहने दे । ” राजा ने ज्योतिषी व मंत्री जी को आदेश देते हुए प्रयोगों के बारे में पूछा ।

“महाराज आप अपने सभी पुत्रों को एक स्थान पर पंगत में खीर का भोजन करने बैठायें । वहीं एक सिंहासन व नगाड़ा रखें । जब खीर खाना राजकुमार प्रारंभ करे उसी समय आप कुत्तों का झुंड वहाँ छुड़वा दें । उस अप्रत्याशित श्वान आक्रमण के समय जो राजकुमार निडर होकर वही रखे सिंहासन पर बैठकर नगाड़ा बजाता जाये , खीर खाता जाये ,और कुत्तों को भी खीर खिलाता जाये । वह कुत्तों के स्पर्श से अछूता रहकर खीर खाये । वही राजगद्दी का सच्चा वारिसदार बनने योग्य माना जाये । ”

दूसरे आप एक स्थानपर सिंहासन-छत्र एवं चँवर राज्यचिन्हों को सजाकर रखें । उसी समय आग लगे । उस समय स्वयं की रक्षा के साथ इन राजचिन्हों की जो रक्षा करके उन्हें बचा ले वही इस पद के योग्य समझा जाये । ज्योतिषी ने परीक्षण के दोनों उपाय सुझाये ।



“मेरे प्यारे पुत्रों । कल मेरा जन्मदिन है । कल मैं चाहता हूँ कि एक खीर की दावत हो । तुम सभी राजकुमार खीर खाने की स्पर्धा करो । जो सर्वाधिक खीर खायेगा । उसे पुरस्कृत किया जायेगा । ” महाराज उपश्रेणिके ने सभी पुत्रों को एकत्र करके स्पर्धा के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहा ।

सभी राजकुमारों को ऐसी नई स्पर्धा के बारे में जानकर आश्चर्य हुआ । पर पिता की आज्ञा थी । एक नया खेल था । अतः सभी ने स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन यथा समय राजकुमारों के मध्य एक सिंहासन रखा गया । पास ही एक नगाड़ा सजाया गया । सभी राजकुमार अपने आसनों पर बैठ गये । उत्तम मेवे दार सुगन्धित खीर परोस दी गई । सभी राजकुमारों ने जैसे ही खीर खाना प्रारम्भ किया, पूर्व योजना के अनुसार उन पर खूंखार कुत्तों का झुंड छोड़ दिया गया । इन भयानक नगड़े खूंखार कुत्तों का आक्रमण होते देखकर डर के

मारे सभी राजकुमार पत्तलें छोड़कर भाग खड़े हुए । पर राजकुमार श्रेणिक नहीं भागे । उनकी शीघ्र बुद्धि ने उनकी मदद की । उन्होंने झटपट कुछ पत्तलों को उठाकर ऊँचे स्थान पर रख दिया और कूद कर सिंहासन पर बैठ गये । वहीं से जोर—जोर से नगाड़ा बजाने लगे । इस नगाड़े की ध्वनि से कुत्तों का ध्यान उस ओर बँट गया । श्रेणिक कुमार ने जो पत्तले उठाकर ऊँचाई पर रखी थी उनमें से एक एक पत्तल को नीचे फेंकने लगे जिससे कुत्ते फेंकी गई पत्तल पर झपटने लगे । वह एक एक पत्तल फेंकते और कुत्तों को उलझाये रखते । कुत्ते आपस में भौं—भौं कर लड़ते—झपटते पत्तलों को चांटते और श्रेणिक आराम से सिंहासन पर बैठ कर अपनी खीर खाते रहे । इस प्रकार बुद्धि चातुर्य से श्रेणिक ने अमृती खीर का भरपेट भोजन किया । कुत्तों की लड़ाई भी देखी और अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया ।

इसी प्रकार कुछ दिनों पश्चात दूसरा परीक्षण भी किया गया । पूर्वयोजनानुसार महल के एक भाग में सिंहासन, छत्र, चँवर रखवा दिए गये । सभी राजकुमारों को राज्य की चर्चा के बहाने एकत्र किया गया । जब किसी चर्चा में लीन हो रहे थे तभी एकाएक उस कमरे में निर्धारित योजना के अनुसार आग लगवा दी । आग लगने की चिल्लाहट सुनते ही सभी राजकुमार अपनी जान बचाने के लोभ में सिर पर पांव रखकर भागने लगे । पर कुमार श्रेणिक ने ऐसा नहीं किया । उन्होंने धैर्य रखते हुए सूझ—बूझ से काम लिया । हिम्मत करके पहले सिंहासन, छत्र चँवर राज्यचिन्हों को बाहर निकाला, और फिर स्वयं सुरक्षित बाहर निकल आये ।

इन दोनों परीक्षणों में श्रेणिक ही श्रेष्ठ एवं युवराज पद के योग्य साबित हुए । चिलातपुत्र तो डरपोक ही निकला । राजा बड़ी परेशानी में फँस गये । वे चिलातपुत्र के लक्षणों से चिंतित तो थे ही । उन्हें भी लगता था कि चिलातपुत्र राज्य में अशांति ही फैलावेगा । उनका मन भी श्रेणिक को युवराजपद देने का था । पर वे वचनबद्ध थे । अतः दुविधाग्रस्त थे ।

“महाराज चेहरे पर चिन्ता की रेखायें क्यों ? ” महामंत्रीजी ने जिज्ञासा से पूछा ।

“मंत्रीजी आप जानते हैं कि दोनों परीक्षणों में श्रेणिककुमार ही सफल हुए हैं । वे योग्य भी हैं । मैं भी उन्हें ही युवराज बनाने के पक्ष में हूँ । पर वचन

बद्धता से द्विधा में हूँ । फिर मुझे एक चिन्ता और भी है ? ”

“क्या महाराज ? ”

“ आप जानते हैं कि परीक्षण के मकसद को मेरे ,आपके एवं ज्योतिषीजी के उपारान्त कोई नहीं जानता है । पर ,यदि यह भेद खुल गया तो श्रेणिक अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए अपनी भुजाओं की शक्ति का उपयोग कर सकता है । यदि ऐसा हो तो गृह कलह राज्य के पतन और प्रजा की पीड़ा का कारण बन जायेगा । दूसरे ,यदि चिलातपुत्र को यह विदित हो जाये कि इस परीक्षण के परिणाम से श्रेणिक का अहित भी कर सकता है । मंत्रीजी आप जानते हैं कि एक पिता होने के नाते मैं मुझे श्रेणिक भी प्रिय है । उसका अहित भी मेरे हृदय को कष्ट पहुँचता है । ” राजा उपश्रेणिक ने अपनी चिन्ता और ममता व्यक्त करते हुए कहा ।

“ महाराज आपकी चिन्ता योग्य है । ” मंत्री ने कहा ।

“ कोई उपाय किया जाना चाहिए कि कुमार श्रेणिक की जान भी खतरे में न पड़े और मेरी प्रतिज्ञा भी बनी रहे । ”

“महाराज एक उपाय है । आप कोई लांछन लगा कर कुमार श्रेणिक को राज्य से निकाल दें । इससे उनके प्राणों की रक्षा भी हो जायेगी और आप चिलातपुत्र को युवराज बना कर अपनी प्रतिज्ञा भी पूर्ण कर सकेंगे । ”महामंत्रीने अपनी चाणक्य बुद्धि से सलाह दी ।

रातभर राजा उपश्रेणिक इस योजना पर विचार करते रहे । उन्हें पुत्र को राज्य से निकालने की पीड़ा सता रही थी । पर और उपाय भी नहीं था । आखिर उन्होंने यही उपाय योग्य माना । प्रातःकाल उन्होंने कुमार श्रेणिक को बुलावा कर आदेश दिया –“कुमार बड़े शर्म की बात है कि तुमने उस दिन कुत्तों की जूठी खीर खाई । तुम भोजन के इतने लालची बन गये कि विवेक भी चूक गये ! ”

“पिताजी यह सच नहीं हैं । ”

“तुम मुझे झूठा कहते हो । मेरा अपमान करते हो । मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम मेरे राज महल और राज्यको छोड़कर चले जाओ । ” राजा ने कृत्रिम क्रोध व्यक्त किया ।

कुमार श्रेणिक को अपनी सफाई में कुछ भी कहने का मौका नहीं मिला ।

एक आज्ञाकारी पुत्र की कर्तव्यनिष्ठा को निभाते हुए उन्होंने पिता के चरण स्पर्श कर चले जाने की तत्परता बताई । वे धीरे-धीरे पिता के कमरे से बाहर हो गये । महाराज चित्रलिखित से जाते हुए बेटे की पीठ ही देखते रहे । आँखें छलछला आईं । मन रो पड़ा । वे अपने आपको धिक्कारते रहे ।

श्रेणिक कुमार के राज्य से जाते ही उपश्रेणिक महाराज का मन उदास रहने लगा । उन्हें श्रेणिक कुमार का विरह सताने लगा । उन्हें लगा कि संसार में माया ही सर्वविनाश का कारण है । दिन प्रतिदिन राजकाज ही नहीं संसार के प्रति उनकी उदासी बढ़ती गई । मोह घटता गया । उन्हें धर्मश्रवण-स्वाध्याय में शांति मिलने लगी । आखिर संसार की विषय वासना , उन्हें कड़वी लगने लगी । राज्य भार सा लगने लगा । वैभव खोखले लगने लगे । विरक्ति ने आसक्ति पर विजय पाई ।

आखिर योग्य मुहूर्त में प्रतिज्ञा के अनुसार चिलातपुत्र को राज्य का भार सौंप कर जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर वे जंगल में आत्मकल्याण हेतु गमन कर गये ।



पिता के आदेश का पालन करते हुए कुमारश्रेणिक ,दक्षिणदेश में कान्ची नगरी में पहुँचे । अपनी बुद्धि एवं चतुराई से वे वहाँ के राजा के प्रिय और विश्वास पात्र बन गये । उन्होंने यह गुप्त रखा कि वे महाराज उपश्रेणिक के पुत्र हैं । एक मुसाफिर के रूप में अपना परिचय दिया । उनकी बुद्धि ,कार्यदक्षता एवं सूझबूझ का महाराज कान्चीपुर को बड़ा लाभ हुआ । कुमार श्रेणिक के दिन भी प्रसन्नता से कटने लगे ।

चिलातपुत्र राज्य सिंहासन पर बैठा । अब पूरे राजगृह में उसका और उसकी माता तिलकवती का शासन चलने लगा । सबसे पहले उसने राज्य के ईमानदार अधिकारियों को हटा कर अपने चापलूसों को नियुक्त किया । वह अपना ध्यान राजकाज की जगह अपने भोगविलास पर अधिक देने लगा । सर्वत्र उसके चापलूसों का बोलबाला हो गया । वह बेरोकटोक अपनी हबस का शिकार भोलीभोली लड़कियों को बनाने लगा । हिंसात्मक शिकार खेलना ,

शराबपीना और अय्यासी करना उसका जीवन क्रम बन गया । लोगों में उसकी दहशत फैल गई । व्यापारी अपनी जानमाल के लिए चिन्तित हो उठे । राज्य में और राजमहल में किसी की इज्जत सुरक्षित नहीं थी । सभी लोग भयभीत रहने लगे । परिणाम स्वरूप लोगों के हृदय में चिलातपुत्र के प्रति नफरत उमड़ने लगी । लोगों को राजा के साथ राज्य से भी घृणा होने लगी । राष्ट्रीयता के भाव घटने लगे । लोगों को चिन्ता तो अपनी जात, इज्जत और मालकी सताने लगी । लोग अनुभव कर रहे थे कि रक्षक ही भक्षक बनने लगा । प्रजा दुखी हो रही थी ।

चिलातपुत्र के इस अन्याय अत्याचार ने प्रजा में घृणा और रोष जन्मा दिया था । विद्रोह की चिनगारी अंदर ही अंदर शोला बन रही थी । वह किसी भी समय भड़क सकती थी । मंत्रियों, राज्य के पुराने सेवकों एवं कुशल मंत्रियों ने चिलातपुत्र को समझाने की कोशिश भी की, पर सब बेकार । उल्टे चिलातपुत्र के कोप का उन्हें भाजन बनना पड़ा ।

राज्य के कुछ वफादार लोग आखिर राज्य को छोड़कर पता लगाते हुए कुमार श्रेणिक के पास कान्चीपुर पहुँचे ।

“कुमार राज्य पर घोर संकट छाया हुआ है । प्रजा जुल्म के पाँव तले रौंधी जा रही है । किसी की भी इज्जत सलामत नहीं हैं । ” रो रोकर लोगो ने चिलातपुत्र के अत्याचारों को सुनाया ।

“ठीक है । आप लोग निश्चित होकर जाइए । मैं शीघ्र अपने विश्वस्त साथियों—सैनिकों के साथ राजगृही पहुँचूँगा । प्रजा से कहें कि वे चिन्ता मुक्त होकर भयमुक्त होकर मेरा साथ दें । ” आश्वासन देकर कुमार श्रेणिक ने प्रजाजनों को विदा किया ।

चंद दिनों बाद ही कुमारश्रेणिक अपने चुने हुए सैनिकों के साथ राजगृही पहुँचे । उनके आगमन के समाचार ने प्रजा में नई उमंग भर दी । पुराने मंत्रीगण, सैनिक एवं समस्त कुमार श्रेणिक के साथ हो गये । विशाल जनमत उनके साथ हो गया ।

कुमारश्रेणिक राज्य में लौट आये हैं । सारी प्रजा उनके साथ हो गई । यह समाचार सुनकर चिलातपुत्र चिन्तित हो उठा । उसने कुमार श्रेणिक के विरुद्ध युद्ध करके उसे खदेड़ने की योजना भी बनाई । पर, उसके गुप्तचरों ने प्रजा का मानस, श्रेणिक के प्रति उनकी वफादारी और सहयोग के समाचार

दिए। सेना से यह जीत असंभव बताई। इससे वह और भी चिन्तित हो गया।

इधर कुमार श्रेणिक का साथ और नेतृत्व पाकर प्रजा चिलातपुत्र को राज्यगद्दी से हटाने के लिए तत्पर हो उठी। आखिर प्रजा का लोक ज्वाल देख कर भयभीत होकर प्राणों की रक्षा करने के लिए चिलातपुत्र जंगल में भाग गया।

राजगृही में रक्तविहीन क्रान्ति के कारण दुष्ट शासक से प्रजा को मुक्ति मिली। कुमारश्रेणिक राजगृही के राज्य सिंहासन पर बैठे। वे अब सम्राट श्रेणिक थे। प्रजा को जैसे पुनः जीवन मिल गया। राज्य में पुनः सुख शांति धर्म की जय गूंजने लगी।

प्रजा के अक्रोष का सामना न कर सकने वाला चिलातपुत्र राजगृही से भाग कर वन में भाग गया। पर उसकी दुष्ट वृत्ति और शासन करने की वासना अभी शांत नहीं हुई थी। जंगल में उसने अपने साथियों की मदद से एक छोटा सा किला बना लिया। और उन जंगल के निवासियों को उशका धमका कर उनका जागीरदार शासक बन बैठा। चिलातपुत्र ने स्वयं को उस प्रदेश का शासक घोषित कर दिया। वह व उसके चापलूस साथी आजू-बाजू के गांव व जंगल के कबीलों पर अपनी धाक जमाने लगा। उनसे जबरदस्ती कर वसूल करने लगा। अपनी मनमानी यहाँ भी करने लगा। शराब-सुन्दरी और शिकार उनका मानो पेशा ही बन गया। स्वतन्त्रता से जीने वाले आदिवासियों में भय व्याप्त होने लगा। पर चिलातपुत्र ऐशोआराम से अपने किले में रहने लगा।

“मामाजी आपकी कन्या सुभद्रा अब सयानी हो गई है। मैं चाहता हूँ कि आप इसका विवाह मेरे मित्र चिलाचपुत्र से कर दे।” चिलातपुत्र के मित्र एवं रूद्रदत्त के भानजे भातृमित्र ने अपने मामा रूद्रदत्त को समझाते हुए कहा।

“पर चिलातपुत्र तो अब निर्वासित भगोड़ा है। उसे कन्या कैसे दे दूँ।”

“नहीं मामा ऐसी बात नहीं है। चिलातपुत्र बहादुर है। उसने जंगल में भी अपना साम्राज्य बना लिया है। देखना बहुत शीघ्र वह पुनः राजगृही का शासक सम्राट बनेगा।” भातृमित्र ने अपने मामा को समझाने हेतु चिलातपुत्र के विषय में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया।

“नहीं भातृमित्र यह संभव नहीं। मैं जानता हूँ कि चिलातपुत्र हिंसक शिकारी, शराबी, व्यभिचारी एवं दुष्ट प्रकृति का है। वह राजगृही का दुश्मन है।

प्रजा का द्रोही है । मैं अपनी बेटी का हाथ उसके हाथों नहीं सौंप सकता । ”
रुद्रदत्त ने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा ।

भातृमित्र निराश होकर जंगल में लौटा । उसने चिलातपुत्र के कान भरे अपनी ममेरी बहन सुभद्रा के रूप सौन्दर्य का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया । चिलातपुत्र को उकसाया कि वह सुभद्रा का हरण कर लाये और उससे विवाह कर ले । भातृमित्र स्वार्थ के साथ खिलवाड़ करने जा रहा है ।

चिलातपुत्र की वासनायें भातृमित्र द्वारा सुभद्रा के रूप के वर्णन को सुनकर प्रज्वलित हो उठीं । उसने निश्चय किया कि वह सुभद्रा को अवश्य प्राप्त करेगा । इन्हीं दुष्ट विचारों के साथ वह छिपकर रात्रि के समय राजगृही नगरी में पहुँचा । रुद्रदत्त के घर से उसने सुभद्रा का हरण कर लिया ।

एकाएक इस संकट में घिरी सुभद्रा बचाओ-बचाओ की आवाजें करके रोने लगी । सारा घर जाग गया । आजू-बाजू के लोग जाग पड़े । चारों ओर बचाओ-बचाओ की गूँज उठने लगी । यह सामाचार जैसे ही सम्राट श्रेणिक को मिला वे अपने सैनिकों के साथ अपने नगर की कन्या को छुड़ाने स्वयं दौड़ पड़े ।

चिलातपुत्र ने देखा कि वह सुभद्रा को लेकर भागने में सफल नहीं हो सकेगा । श्रेणिक के सैनिक उसे पकड़ लेंगे । उसे मार डालेंगे । यह विचार आते ही उसने अपनी जान बचाने के लिए सुभद्रा को कंधे से नीचे पटक दिया । उसकी दुष्टता इस पराकाष्ठा पर पहुँची कि उसने सुभद्रा का कत्ल कर दिया । उसे लगा कि जिस लड़की को वह नहीं भोग सका उसे दूसरा क्यों भोगे । वासना की तीव्रता और दुष्टता की पराकाष्ठा का परिणाम सुभद्रा की मौत बना ।

सुभद्रा का कत्ल कर अपनी जान बचाने के लिए चिलातपुत्र भागने लगा । राजा श्रेणिक और उसके सैनिक उसे पकड़ने के लिए पीछे-पीछे दौड़ रहे थे ।

चिलातपुत्र ने देखा कि सामने वैभारपर्वत है । वह उसमें छिपने के लिए उस पर चढ़ने लगा । वहाँ उसने देखा कि यहाँ मुनिराज का संघ विराजमान है । एकाएक चिलातपुत्र के मन में विचार आया – “सैनिकों के हाथों मरने से अच्छा है कि मैं तप धारण कर समाधिमरण करूँ । ” बस एकाएक दुष्ट विचारों में परिवर्तन हुआ । चिलातपुत्र के अंतर की विषैली कालरात्रि में यह धर्मका सूर्य उदति हो गया । इसी विचार से उसने आचार्य मुनिदत्त जी से व्रत ग्रहण करने की याचना की “महाराज मैं तप में लीन होना चाहता हूँ । आप कृपा करके मुझे

व्रत प्रदान करे । ”

महाराज मुनिदत्त जी ने अपने ज्ञान द्वारा जान लिया कि इसकी आयु समाप्त होने को है । उन्होंने गंभीर वाणी में कहा -“हे भव्य आत्मान् तूने व्रतधारण करने का जो विचार किया है वह योग्य ही है । मेरा निमित्त ज्ञान कहता है कि अब तेरी उम्र सिर्फ ८ दिन शेष हैं । तू व्रत धारण कर आत्मकल्याण हेतु तपाराधना में लीन बन कर मुक्ति प्राप्त कर । ” कहते हुए मुनि महाराज ने चिलातपुत्र को जिनदीक्षा प्रदान करते हुए समाधिमरण का व्रत प्रदान किया । चिलातपुत्र ने उसी क्षण सभी प्रकार के आहार का त्याग कर ध्यानास्थावस्था में लीन हो गये ।

इधर राजाश्रेणिक चिलातपुत्र का पीछा करते करते वैभारपर्वत पर पहुँचे । पर यहाँ का दृश्य ही कुछ और था । उन्होंने देखा मुनि संघ विराजमान है । वहीं कुछ क्षण पूर्व का दुष्ट लंपट चिलातपुत्र दिगम्बर मुनि अवरथा में ध्यान में लीन है । पहले तो उन्हें इसमें भी उसकी चाल ही नजर आई । इसे भी एक ढोंग ही समझा । पर मुनि महाराज मुनिदत्त द्वारा उसके भविष्य के बारे में ज्ञातकर एवं वास्तविक रूप से चिलातपुत्र ने मुनिदीक्षा ली है यह जानकर उन्होंने श्रद्धासहित उन्हें वंदन किया । इसी समय उन्होंने मुनिदत्त महाराज से विनय सहित उपदेश की प्रार्थना की ।

“राजन्! सैनिकों !! जीवन का अंत मृत्यु है । मृत्यु शाश्वत सत्य है । इसके सामने कोई भी नहीं बच सका । पर, जिसने मृत्यु के क्षण सुधार लिया उसका वर्तमानभी आगम जीवन सुधर जाता है । मृत्यु के समय व्यक्ति को आर्त-रौद्र ध्यान से मुक्त होना चाहिए । संसार के भोग विलास , वैभव परिवार मित्र सभी के मोह से मुक्त हो जाना चाहिए । मोह ही ऐसा व्यवधान है जो मृत्यु को भयवान और विकृत बना देती है । आसन्न संकट में समाधिमरण ही श्रेयस्कर है । जो इन मौत .संसार एवं स्वयं के शरीर तक से निर्मोही बन कर आत्मा में लीन हो जाता है । उसके लिए मृत्यु महोत्सवी सी बन जाती है । ऐसा प्राणी पशु और नर्क के दुख से अवश्य छूट जाता है । हे भव्यजीवों क्रमशः मोह को क्षीण कर मुक्ति पथ के पथिक बनो । ”

महाराज के वचनामृत का पान करते हुए चिलातपुत्र के अंतिम निर्णय

एवं उसकी दृढ़ता की सराहना करते हुए महाराज श्रेणिक अपने सैनिकों के साथ राजगृही लौट आये ।

कल के हिंसक दुष्ट चिलातपुत्र की दिशा एकाएक बदल गई । आज वे पुनीत साधु के वेश में आत्मकल्याण में पूर्ण समर्पित थे । उनके जीवन में अंधकार के स्थान पर पूर्ण प्रकाश फैल चुका था । अब वे देह से देहातीत बन चुके थे । उन पर अब शर्दी , गर्मी , बरसात का कोई प्रभाव नहीं था । भूख , प्यास पर वे विजय पा चुके थे । जीवजंतुओं का संत्रास उन्हें नहीं सता पाता था । उनका पूरा ध्यान आत्मा के साथ एकाकार हो चुका था । वासनापथ का भटका राही अब आत्मपथ का राही बन चुका था । कर्मों का क्षय वे तापग्नि द्वारा कर रहे थे ।

पूर्वकर्म अपना फल दिए बिना कब रहते हैं ? पूर्व पाप कर्म अपने उदय में आ रहे थे । अपनी वासना की तृप्ति एवं विवाह की लालच में जिस सुभद्रा नामक कन्या का अपहरण कर उसे मौत के घाट उतारा था , वह सुभद्रा अकाल मरण के कारण व्यंतरी हो गई थी । उसी वन प्रांतर में विचरण करती थी ।

“अरे यह तो वही राजकुमार चिलातपुत्र है जिसने मेरा अपहरण किया था । जिसके पाप के कारण मेरे हाथों की मेहदी ही धुल गई थी । जिसकी वासना के कारण मैं सुहाग का सिन्दूर नहीं भर सकी थी । यही तो है वह दुष्ट जिसने अपनी जान बचाने के लिए मेरी अकाल हत्या कर दी थी ।” व्यंतरी ज्यों—ज्यों मुनि चिलातपुत्र के निकट आती गई त्यों—त्यों उसकी पूर्व स्मृतियाँ सतेज होती गई । उसे गत जीवन की अपहरण से मृत्यु तक की सम्पूर्ण घटना चलचित्र सी दिखाई देने लगी । वे स्मृतियाँ उसमें क्रोध , वैरभाव बढ़ाने लगी । उसका मन बदले की भावना से भर गया । उसका मन रौद्र भावों को धारण करने लगा । नफरत और क्रोध ने उसके नेत्रों को लाल कर दिया । नथुने फड़कने लगे । बस बदला—बदला एक ही भाव उमड़ने लगा । वह यही विचार करने लगी — “आज अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का व्याज सहित बदला लूँगी । देखो ढोंगी को कैसा रूप बनाकर बैठा है ।” सोचते सोचते व्यंतरीदेवी ने अपनी विद्या से चील का रूप धारण कर लिया ।

चील—स्वरूप—धारिणी व्यंतरी मुनि चिलातपुत्र के सिर पर आकर बैठ

गई और अपनी पैनी चोंच से उनके मस्तक ,भाल प्रदेश ,आँखों ,कानों पर आघात करने लगी । हर आघात के बाद उसे क्रूर आनंद की अनुभूति होती थी। उसे एक राक्षसी आनंद और संतोष होता था । हर चोंच मारने से मुनि के शरीर से रक्त की धारा फूट पड़ती थी । इस बहते हुए रक्त को देखकर वह मन ही मन फूल जाती और कहती –“ले दुष्ट, जैसा तूने मुझे मारा था । मेरा रक्त बहाया था वैसे ही मैं तुझे मारूँगी । रक्त से स्नान कराऊँगी । ये ले अब तेरी वे आँखें जिनमें वासनाओं के नाग लहरावे थे उन्हें ही इस शरीर से अब अलग कर रही हूँ । ” मन में कहते कहते उसने मुनि की दोनों आँखें ही फोड़ डाली । आँखों से रक्त की धारा बह चली ।

“ले इन कानों का अस्तित्व मिटा रही हूँ । जिसने मेरे रूदन को नहीं सुना था । जो अच्छाई सुने के लिए तैयार नहीं थे । ” ऐसा विचार कर उसने कानों को काट-काट कर उसके पर्दों को ही चीर डाला ।

“ दुष्ट इसी मुख से तूने मुझे गालियाँ दी थी । ” चील ने मुनि के मुख पर अनेक बार चोंच के वार करके उसे विकृत बना दिया ।

इसी प्रकार उनके हाथ,पीठ,पोट,लिंग आदि को अपने तीक्ष्ण प्रहारों से क्षत-विक्षत कर दिया । मुनिचिलातपुत्र का पूरा शरीर रक्त की धाराओं से रंग गया । शरीर के हर अंग से रक्त धारायें बहने लगी थी । उनकी यह हालत देख कर व्यंतरी हर्षनाद कर रही थी ।

व्यंतरी कभी चीलका कभी विषैली मक्खी का कभी अन्य विषैले जन्तुओं का रूप धारण कर उनके शरीर को अपार वेदना पहुँचाती रही ।

चिलातपुत्र को अब यह संकट ,पीड़ा का जैसे कोई अनुभव ही नहीं हो रहा था । ज्यों-ज्यों उन पर चोंच का आघात होता त्यों-त्यों उनकी दृढ़ता और भी बढ़ती जाती । वे आत्मा में अधिक लीन होते जाते । हर चोट उनकी दृढ़ता बढ़ाती । वे अधिकाधिक आत्मा के साथ जुड़ते जाते । देह से उनका संबंध ही टूट गया । समाधि में लीन चिलातमुनि देह से बेखबर ही हो गए । व्यंतरी का हर आघात मानों उनके कर्मों की निर्जरा में सहायक बनता गया । उन्होंने देह को छोड़ा पर धैर्य न छोड़ा । आखिर वे नश्वर देह से मुक्त होकर मुक्तिधाम के वासी बने । उनकी दृढ़ता तप के समक्ष व्यंतरी भी हार गई ।

विद्युच्चर मुनि

“कोतवाल यमदण्ड तुम्हारे जैसा होशियार कोतवाल होते हुए भी राजमहल में चोरी हो गई। यह बड़े आश्चर्य की बात है। तुम चोर को जैसे भी हो हाजिर करो, अन्यथा तुम्हें इससकी सजा भुगतनी पड़ेगी।” मिथिलापुर के राजा वामरथ ने अपने कोतवाल को डाँटते हुए कहा।

“महाराज आश्चर्य तो मुझे भी है। मैं इसके लिए लज्जित भी हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं सात दिन में आपके समक्ष चोर को हाजिर करूँगा। अन्यथा आप जो भी सजा देगे वह मुझे मन्जूर होगी।” कहते हुए यमदण्ड ने महाराज से निवेदन किया।

यमदण्ड को आश्चर्य हो रहा था कि उसके इतने कड़े इन्तजाम के बावजूद यह कैसे हो गया ? और फिर चोरी भी हुआ तो महाराज का वह हार जो सबसे मूल्यवान था। लगता है अवश्य कोई रक्षक या तो चोर से मिला है या फिर कोई बहुत ही माहिर चोर का यह कार्य है। इस प्रकार यमदण्ड की चिन्ता बढ़ती गई। न उसे रात को नींद आती, न दिन को चैन मिलता। वह दिन भर इसी उधेड़बुन में रहता कि कैसे चोर को पकड़ सके। उसे यह भय भी सताता कि यदि सात दिन में चोर को गिरफ्तार न कर सका तो मेरे ही प्राणों का अन्त हो जाएगा। यमदण्ड ने अपने गुप्तचरों को शहर की गली-गली, घर-घर, सब कुछ छान डालने को कहा। सारा गुप्तचर विभाग छान बीन करके थक गया परन्तु कहीं पर भी चोर का कोई सुराख नहीं मिला। छह दिन बीत जाने पर भी जब कोई सुराख न मिल सका तब यमदण्ड की चिन्ता और भी बढ़ गई। आज सातवाँ और अन्तिम दिन था। यदि आज भी चोर का पता न चला तो, अवश्य उसे सजा भुगतनी पड़ेगी। आखिर आज अन्तिम दिन यमदण्ड ने स्वयं चोर को ढूँढ़ने का संकल्प किया। वह अनेक जगहों का निरीक्षण करते समय रास्ते से गुजर रहा था तो उसने एक सुनसान पुराना जीर्ण शीर्ण मंदिर देखा। यमदण्ड उस मंदिर के अन्दर घुसा तो उसने वहाँ देखा कि एक कोढ़ी वहा पड़ा हुआ है। यमदण्ड ने कोढ़ी से जानकारी हेतु कुछ प्रश्न किये। लेकिन उनका

कोई सन्तोषजनक उत्तर उन्हें नहीं मिला । इस कारण उन्हें यह विश्वास हो गया कि यह सचमुच का कोढ़ी नहीं है, अवश्य वेशपरिवर्तन करके यह कोई ठग ही लगता है । यमदण्ड ने अन्धेरे में एक तीर चलाया आखिर मरता क्या न करता ।

“सच—सच बताओ कि तुम कौन हो ? तुमने यह स्वांग क्यों रचाया । ” यमदण्ड ने अपनी शंका के आधार पर कोढ़ी से पूछा ।

“मैं ढोग नहीं कर रहा हूँ । मैं सचमुच कोढ़ के भयानक रोग से पीड़ित हूँ । देखते नहीं मैं इस छूत के भयानक रोग के कारण अपने घर परिवार से दूर यहाँ एकान्त में जंगल में पड़ा हूँ । ” कोढ़ी ने सफाई देते हुए कहा ।

“ तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ के रहने वाले हो ? इस राज्य में इस शहर में तुम्हें कभी देखा नहीं है , और तुम खाते—पीते क्या हो ? यहाँ पर भोजन बनाने का कोई साधन भी नहीं दिख रहा । है । तुम्हें भोजन कौन पहुँचाता है ? तुम्हारी सेवा कौन करता है ? ” यमदण्ड ने कोढ़ी पर प्रश्नों की बौछार कर दी ।

कोढ़ी कोतवाल के इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर न दे सका । जो भी उत्तर दिया वे व्यवस्थित न होने से यमदण्ड की शंकाको ही दृढ़ करते गए । इससे यमदण्ड का शक और भी मजबूत होता गया । यमदण्ड ने आखिर शंका के आधार पर कोढ़ी को बन्दी बना कर महाराज के समक्ष उपस्थित करते हुए निवेदन किया —“महाराज यह रहा आपका चोर । इसी ने आपके हार को चुराया है । ”

“क्यों रे कोढ़ी ,तू ने मेरा हार चुराया है । अरे! इस भयानक रोग से पीड़ित होकर तू अपने पूर्वजन्म के पाप कर्मका फल तो भोगही रहा है और अब यह चोरी का पाप करके क्यों नरकगति में जाने का कार्य कर रहा है । ” राजा वामरथ ने कोढ़ी को समझाते हुए पूछा ।

“महाराज मैं चोर नहीं हूँ । मैं तो वैसे ही कर्मों को भोग रहा हूँ । मैं आपाहिज हूँ । चोरी कैसे कर सकता हूँ ? यह तो मेरे पापकर्म का ही उदय है कि ऐसी दुःखी अवस्था में मुझ पर यह आरोप लगाया जा रहा है । ” गिड़गिड़ते हुए कोढ़ी ने अपनी सफाई पेश की ।

“यह झूठ बोलता है, महाराज इसका यह गिड़गिड़ाना भी ढोग है । मुझे पूरा विश्वास है कि यही हार का चोर है । ” कोतवाल ने अपना मत दोहराया ।

“कोतवाल जी मैंने आपका क्या बिगाड़ा है ? आप मुझे गरीब से किस

जन्म का बैर ले रहे हैं। क्यों मुझ निर्दोष को मृत्युदण्ड दिलाने पर तुले हैं? मुझ जैसा अपाहिज क्या आप जैसे कोतवाल की कड़ी सुरक्षा तोड़कर चोरी कर सकता है? ” कोढ़ी ने यमदण्ड के समक्ष हाथ जोड़कर सफाई पेश की।

महाराज को भी आश्चर्य हो रहा था कि कोतवाल इस कोढ़ी को किस आधार पर पकड़ लाये। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह कमजोर सा रोगी इतनी कड़ी सुरक्षा को चीर कर मेरा हार भी चुरा सकता है। इसलिए वे कौतुक से कभी कोढ़ी को और कभी यमदण्ड कोतवाल को देखते। महाराज समझ ही नहीं पा रहे थे कि क्या निर्णय दें। उन्हें यह सन्देह भी हुआ कि कोतवाल अपनी निष्फलता को छिपाने के लिए इस रोगी को फँसा रहे है।

“कोतवाल जी मुझे तो नहीं लगता कि यह कोढ़ी इतनी बड़ी चोरी भी कर सकता है। क्यों इसे जबरन बिना किसी सबूत के पकड़ लाए हो।” महाराज ने अपनी शंका व्यक्त करते हुए कहा।

“महाराज हमें भी ऐसा ही लग रहा है कि कोतवाल जी का अनुमान सही नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि गरीब भिखारी निर्दोष मारा जाये।” प्रधान मन्त्री ने भी अपनी राय दी। प्रधान मन्त्री की हाँ में हाँ उपस्थित अन्य कर्मचारियों ने भी मिलाई।

“महाराज मेरा सन्देह गलत नहीं हो सकता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यही चोर है। आप मुझे एक दिन की मोहलत और दें।” कोतवाल ने दृढ़ता से कहते हुए प्रार्थना की।

महाराज ने कोतवाल को एक दिन का समय दिया। कोतवाल कोढ़ी चोर को कारागार में ले गया और उसे पूरी तरह से मारा, पीटा और अनेक यातनाएँ दी। लेकिन कोढ़ी का इन यातनाओं के भोगने के बाद भी उत्तर यही था—मैं चोर नहीं हूँ। आखिर कोतवाल भी हर प्रकार की यातनाएँ दे कर थक गया। वह सोचने लगा—“मैंने भयानक से भयानक गुनहगारों से गुनाह कबूल करवाये हैं। मेरी सजा और यातनाओं के सामने मजबूत से मजबूत चोर भी टूट गए हैं। परन्तु न जाने यह चोर किस माटी का बना है। इतनी मार खाकर तो शायद ही कोई बचता है। पर इस पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ रहा है। मेरी बुद्धि ही काम नहीं कर रही है। यदि मैं इससे कबूलात नहीं करवा पाया तो मुझे सजा भुगतनी पड़ेगी। और इसे मारने की, सताने की बदनामी भी भुगतनी

पड़ेगी । ” इस प्रकार तर्क-वितर्क में कोतवाल रात भर करवटे बदलता रहा । दूसरे दिन कोतवालने कोढ़ी को महाराज के सामने पेश किया । “कहिये कोतवाल जी ,आप के अपराधी ने जुर्म का स्वीकार किया या नहीं । लगता है जुर्म कबूल कराने के लिए आपने अपनी पूरी शक्ति लगा दी है । कोढ़ी के सूजे हुए मुख ,बहता हुआ खून ,चोट के निशान और कराहने के स्वर सुन कर उसकी पिटाई का अन्दाज लगाते हुए महाराज ने अर्थ पूर्ण दृष्टि से कोतवाल को देखते हुए व्यंग से पूछा ।

“महाराज यद्यपि इसने जुर्म का स्वीकार नहीं किया है ,परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि यही चोर हैं । ” यमदण्ड ने अपनी बात दोहराई ।

“महाराज मैं निर्दोष हूँ । मैंने पहले भी निवेदन किया था । मैं बारम्बार यही कहता हूँ, कि मैं चोर नहीं हूँ । मैंने चोरी नहीं की है । मुझ गरीब अपाहिज और रोगी को सताया जा रहा है । आप दयालु राजा हैं । मुझे न्याय दीजिए । मेरी जान की रक्षा कीजिए । ” गिड़गिड़ाते हुए कोढ़ी राजा के चरणों में गिर पड़ा ।

महाराज असमंजस में थे । एक ओर कोतवाल अपनी दृढ़ता पर थे ,पर उनके पास कोई प्रमाण नहीं था । दूसरी ओर कोढ़ी गिड़गिड़ा रहा था । महाराज ने कुछ देर तक विचार किया । फिर उन्होंने उस कोढ़ी से कहा –

“ठीक है मैं मानता हूँ कि तुम्हारे विरुद्ध कोई चोरी का प्रमाण नहीं मिला है । कोतवाल साहब भी तुम्हें चोर सिद्ध नहीं कर पाये हैं । परन्तु मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ –यदि तुम सच-सच सब कुछ बता दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जायेगा । ” महाराज ने कोढ़ी को मानसिक रूप से तैयार करते हुए कहा ।

“ महाराज आप तो प्रजावत्सल हैं । आपने जब अभयता का वचन दिया है तो मैं आपके समक्ष असत्य नहीं कह सकता । महाराज ,वास्तव में मैं ही हार का चोर हूँ । कोतवाल जी का अनुमान तो सही था ,पर वे न तो कोई प्रमाण जुटा सके और न ही मुझसे चोरी का स्वीकार करा सके । ” कोढ़ी की इस स्वीकारोक्ति को सुनकर महाराज आश्चर्य में डूब गए । उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि जो कार्य कोतवाल अनेक यातनाओं के बाद भी नहीं करा सके, वह बात साधारण प्रेम सुहानुभूति और मानसिक उपचार से कराई जा सकी है । उन्हें आश्चर्य इस बात का भी था कि इतनी मार खाने के बाद भी उसने चोरी का

जुर्म क्यों नहीं कबूल किया ।

“तुमने अपना अपराध स्वीकार किया ,इससे हम तुम्हें अपने वचनानुसार क्षमा करते हैं । परन्तु यह बताओं कि तुम कौन हो ? और इतनी पीड़ा क्यों सहन की ?” राजा ने जिज्ञासा से कोढ़ी से पूछा ।

“महाराज मेरा नाम विद्युच्चर है । वेनातट नगर से राजा जितशत्रु और रानी जयावती मेरे माता-पिता हैं । आपके यमदण्ड कोतवाल मेरे मित्र हैं । ”

“ क्या ? यमदण्ड तुम्हारे मित्र कैसे हुए ?” महाराज ने आश्चर्य से पूछा ।

“महाराज आपके कोतवाल यमदण्ड मेरे पिता के कोतवाल यमपाश के सुपुत्र हैं । इनकी माता का नाम यमुना है । हम दोनों ने एक ही गुरु के पास शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की है । इन्होंने रक्षा सम्बन्धी शास्त्रों का अध्ययन किया और मैंने मनोविनोद के लिए चौर्य शास्त्र का अध्ययन किया । हम दोनों को अपनी अपनी विद्या पर बड़ा गर्व था । ” कहते-कहते विद्युच्चर ने मुस्कराते हुए यमदण्ड की ओर देखा ।

“महाराज यह बात सच है ,लेकिन मेरा मित्र विद्युच्चर स्वरूपवान राजकुमार है । यह कोढ़ी झूठ बोल रहा है । मुझे बदनाम करने की दृष्टि से यह मेरे मित्र के नाम का उपयोग कर रहा है । ”

“ विद्युच्चर यदि तुम सचमुच राजकुमार विद्युच्चर हो तो तुम ऐसे कुरूप और रोगी कैसे हो गए ? ” राजा ने शंका से कोढ़ी से पूछा ।

“महाराज चौर्य विद्या में वेषपरिवर्तन की कला भी सिखाई जाती है । मैंने उसी कला का उपयोग किया । मैं दिन में कोढ़ी का वेश धारण कर लेता था और उस सुनसान मंदिर में पड़ा रहता था । रात्रि में अपने मूलरूप में राजकुमार की तरह आनन्द करता था । यह सारा वेषपरिवर्तन मेरे लिए तब तक आवश्यक था जबतक मैं आपका कीमती हार न चुराता । ”

“ फिर हार चुराने के बाद भी तुम कोढ़ी के वेष में मंदिर में क्यों पड़े रहते थे ? ” महाराज ने रहस्य जानने के लिए पूछा ।

“महाराज मेरा उद्देश्य हार चुराना नहीं था । मैं तो चाहता था कि शंका से ही सही कोतवाल मुझे पकड़े और यह हार जाये । ” कहते कहते विद्युच्चर ने राजा के सामने ही वेषपरिवर्तन किया और खूबसूरत नौजवान के रूप में दिखाई देने लगा ।

उसके इस परिवर्तित रूप ,उसके सौन्दर्य को देखकर राजा मुग्ध हो गए। विद्युच्चर का असली रूप देखकर यमदण्ड दौड़कर उसके गले लग गया और दुःखी होकर उसे न पहचान सकने की अपनी गलती पर बार-बार क्षमा याचना करने लगा ।

“राजकुमार विद्युच्चर हम यह जानना चाहते हैं कि तुम ने चोरी क्यों की और इतनी यातना क्यों सही । ” महाराज ने अपनी जिज्ञासा दोहराई ।

महाराज मैं आपसे पहले निवेदन कर चुका हूँ कि हम दोनों मित्र अपने-अपने ज्ञान में पूर्ण हो चुके थे । हम दोनों को अपने ज्ञान का गर्व था ! एकबार मैंने मित्र से कहा था –“भाई यमदण्ड चोर कोतवाल से ज्यादा चतुर होता है । तब यमदण्ड ने गर्व से कहा था –“कोतवाल की नजर इतनी पैनी होती है कि वह चोर को पाताल से भी निकालकर ला सकता है । ” तब मैंने कहा था –“यमदण्ड मैं इस चौर्य कार्य में कितना होशियार हूँ । इसका परीक्षण मैं तुमसे ही करवाऊँगा । जिस राज्य में या शहर में तुम कोतवाल होगे ,वही मैं उस स्थान पर उस बहूमूल्य वस्तु की चोरी करूँगा । जिसकी तुम जीजान से रक्षा कर रहे होगे । ” इन्होंने भी कहा था –“ठीक है मैं भी उसी शहर की कोतवाली करते हुए अपनी जान की बाजी लगाकर भी रक्षा करूँगा । जहाँ तुम चोरी करोगे । ”

बस उसी परीक्षण की भावना से इन्हें अपनी चतुराई दिखाने के लिए यह सब किया ,और यह सिद्ध कर दिया कि इनकी संरक्षण विद्या से मेरी चोरविद्या अधिक सफल रही है ।

“विद्युच्चर यह हमने मान लिया कि तुम चौर्य कर्म में हमारे कोतवाल से अधिक चतुर सिद्ध हुए हो । परन्तु एक बात समझ में नहीं आई । तुम जब चोरी करने में सफल हो गए थे ,तो तुम अपने मित्र को पहली ही बार में सबकुछ बता कर मार खाने से बच सकते थे ,फिर भी तुम मार क्यों खाते रहे ? ” महाराज ने रहस्य जानने की भावना से पूछा ।

“महाराज यह मेरे जीवन का व्यक्तिगत कारण है । इसकी एक विशेष कहानी है । श्रीमान एक बार मैं एक मुनि महाराज के दर्शनार्थ गया था । वहाँ

मैंने उनके प्रवचनों में नरकों की वेदना और वहाँ के दुःखों का वर्णन सुना था । उस समय मुझे ऐसा लगा था कि नरकों की जिस वेदना का वर्णन महाराज श्री कर रहे हैं और शास्त्रों में जिसका वर्णन है , उस दुःख और वेदना की तुलना में संसार के ये दुःख तो कुछ भी नहीं हैं । मुझे लगा कि मैंने अनेक जन्मों में नरक की वेदनायें सही होंगी । उन भयंकर दुःखों को झेला होगा । इसलिए मैं देखना चाहता था कि इस जन्म में चोरी की सजा भुगत कर अनुभव करूँ कि मार की वेदना कैसी होती है ? मैंने अपने मित्र द्वारा जिस यातना को सहा है वह तो नरक की वेदना के सामने नगण्य ही है । मुझे यह भी महसूस करना था कि चोरी के जुर्म में दूसरों को कैसा कष्ट पहुँचता होगा । बस इसी भावना से मैं यातना सहता रहा । इससे मुझे यह प्रसन्नता भी हुई कि मैं कितना कष्ट सहन कर सकता हूँ । ” विद्युच्चर ने अपनी मन की बात कह दी ।

“विद्युच्चर तुम्हारे इस कथन से मुझे तुम्हारी सहनशक्ति पर बड़ा सम्मान हो रहा है । तुम्हारे मन में नरकों के दुःखों का जो भय है , वह अवश्य तुम्हें एक दिन कर्मबन्ध से मुक्ति दिलाएगा । एक बात मुझे अपने कोतवाल जी से भी पूछनी है कि जब यमदण्ड जी के पिता आपके कोतवाल थे और उत्तराधिकारी इन्हें मिलना था फिर ये अपना राज्य छोड़कर यहाँ क्यों आये । ” महाराज ने कोतवाल जी की ओर इशारा करते हुए विद्युच्चर से जानना चाहा ।

“महाराज इसका कारण है कि यमदण्ड जी का मुझसे भयभीत होना ।
“सो कैसे ? ”

“महाराज मेरे पिता जितशत्रु जी ने मुनि महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर वैराग्य धारण कर मुनि दीक्षा ले ली । और साथ ही यमदण्ड जी के पिता यमपाश जी ने भी आत्मकल्याण हेतु जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली । इससे मुझे राज्य का कार्यभार सम्हालना पड़ा और यमदण्ड की कोतवाल पद पर नियुक्ति हुई । लेकिन इन्हें वह शर्त भय बनकर सता रही थी कि मेरे चौर्यकर्म से कहीं इनकी जान खतरे में न पड़ा जाए । क्योंकि किसी भी चोरी का इल्जाम राजा होने के नाते ये मुझ पर लगा न पाते । इसलिए इन्होंने मेरे राज्य की रक्षा का

भार छोड़कर आपके यहाँ कोतवाल का स्थान ग्रहण किया । ”

“ क्या यह बात सच है ? ” महाराज ने यमदण्ड से पूछा ।

“ हाँ, महाराज यह सच है । इन्होंने मुझे मेरे पिता के स्थान पर सम्मान सहित नियुक्त किया । परन्तु मुझे यही आशंका रहती थी कि कहीं इनकी चौर्यकर्म की कुशलता मेरी फाँसी का फंदा न बन जाए । इसीलिए मैं आपके यहाँ चला आया । ”

“महाराज अपने इन्हीं मित्र को दूढ़ने के लिए मैं यहाँ आया था । जब मैंने देखा कि ये श्रीमान ,यहाँ नियुक्त है । तो मैंने सोचा कि अपनी चौर्यविद्या की श्रेष्ठता सिद्ध करने का यही आवसर है, और मैं उसे श्रेष्ठ भी सिद्ध कर सका । इससे मुझे दो लाभ हुए हैं, एक तो अपनी कुशलता सिद्ध करने का मौका मिला दूसरे मार खाकर अपनी सहनशक्ति का परीक्षण करने का मौका मिला । महाराज मैं आप से कुछ मांगना चाहता हूँ । ” विद्युच्चर ने विनय से महाराज से कहा ।

“कहिए महाराज विद्युच्चर क्या आदेश है ? ”

महाराज वामरथ ने सबकुछ जानकर विद्युच्चर को महाराज कहकर सम्बोधित किया ।

“महाराज आप मुझे शर्मिन्दा न करे । मैं तो आपका अभियुक्त हूँ । मैं चाहता हूँ कि आप मेरे मित्र कोतवाल यमदण्ड को मेरे साथ लौट चलने की आज्ञा दे मैं अपने मित्र और कुशल कोतवाल को राज्य की सुरक्षा सौंप कर आत्मकल्याण के मार्ग पर आरूढ़ होना चाहता हूँ ।” महाराज ने ,महाराज विद्युच्चर को सम्मान ,भेंट ,सौगात सहित यमदण्ड कोतवाल के साथ विदा किया । विद्युच्चर अपने मित्र को लेकर अपनी राजधानी में लौट आये ।



महाराज विद्युच्चर और कोतवाल यमदण्ड वेनातट नगरी में लौट आये । राज्य की सुरक्षा की बागडोर यमदण्ड ने सम्हाल ली । एक दिन विद्युच्चर ने अपने पुत्र, कोतवाल एवं अन्य वरिष्ठ पदाधिकारियों को अन्तःपुर में बुलाकर कहा-

“कोतवाल जी! आप की सुरक्षा और मंत्रीगण की कार्य निष्ठा से राज्य में अमनचैन है । मेरे पुत्र भी अब राज्यकार्य में योग्यता प्राप्त कर चुके हैं । इसलिए मैं इस गृहस्थ जीवन का त्याग कर आत्मकल्याण के मार्ग पर आरूढ़ होना चाहता हूँ । आप लोग मुझे सहर्ष इस पथ पर जाने की अनुमति देगे । आप लोग नये युवाराज को पुत्रवत् स्नेह देकर राज्य की सुख और समृद्धि के लिए कार्य करते रहेंगे । ”

महाराज विद्युच्चर के इस कथन से सभी व्याकुल हो गए । महारानी रोने लगी । अनेक लोगों की आँखे छलछला आयीं । लेकिन महाराज की दृढ़ता के सामने सभी नतमस्तक थे । इन सब के आँसुओं को देखकर विद्युच्चर ने समझाया—“आप सब का दुःख मोह जनित है । हम लोग न जाने कितने भवों में कितनी बार मिले और बिछुड़ गए । मोह के इन्ही बन्धनों से हमें भव भ्रमण के कष्ट सहने पड़े । इस जन्म में भी उसी मोह के वशीभूत होकर दुःखी हो रहे हैं । मैं चाहता हूँ कि क्रमशः इस मोहपाश से मुक्त होकर हम आत्मकल्याण की ओर मुड़ें । ”

महाराज विद्युच्चर संसार त्याग कर वीतरागपथ का अनुशरण करने वाले हैं यह समाचार सारे राज्य में फैल गया । लोग इस त्याग की महिमा को निरखने के लिए , अनुमोदना करने के लिए और प्रेरणा लेनेके लिए राजधानी की ओर चल पड़े । लोगों ने देखा कि महाराज विद्युच्चर ने पंचपरमेष्ठी प्रभु की पूजा अर्चना की और अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण का वैसे ही त्याग कर दिया , जैसे सांप अपनी केंचुली उतार देता है । लोगों ने देखा कि कल का राजा आज फकीर बन गया । वस्त्राभूषणों से सुशोभित शरीर पूर्ण दिगम्बर अवस्था में शोभा दे रहा है । उनके चेहरे की कान्ति दमक रही है । लोगो ने आश्चर्य से निहारा कि सौन्दर्य वर्धक केशों का वे निर्ममता से लुंचन कर रहे हैं । मुँह से कोई दुःख वाचक शब्द नहीं निकल रहा है । चेहरे पर कोई विषाद नहीं है । उनके इस त्याग, दृढ़ता , और मुनिवेष को देखकर चारों ओर से उनकी और जैनधर्म की महिमा का जय-जयकार गूंजने लगा ।

मुनिवेश में महाराज विद्युच्चर ने लोगों को सम्बोधित करते हुए संसार की अनित्यता पर कहा —“भाईयों सारा संसार क्षणभंगुर है । पानी के बुलबुले की तरह फूट जाता है । हम अनन्त जन्मों से इस जीवन को जीते रहे हैं । हमने अनेक बार अनेक ऊँचे पद और प्रतिष्ठा सम्पन्न जीवन भी पाए । धन, कुटुम्ब, रूप, शक्ति विद्या सब कुछ पाया । लेकिन आत्मतत्व को जाने बिना यह सब क्षणिक सिद्ध हुए । मरते समय कोई इस जीव को बचा नहीं सका । सारे कुटुम्ब परिवार के लोग । स्मशान तक के ही साथी रहे । संसार वैभव हमेशा पर पदार्थ की तरह छूटते रहे । धन-सम्पत्ति केपीछे हम हर प्रकार के पापों में जकड़े रहे । लेकिन वह धन भी साथ न गया । हमारा दुर्भाग्य तो यह रहा कि हम इस गन्दे, रोग के घर, बूढ़े हो जाने वाले और मरणधर्मा शरीर को सजाते रहे । हमने आत्मा का ध्यान ही नहीं किया । इस नश्वर देह को पकवान खिलाकर मादक बनाये रहे । आत्मा को भूले रहे । लेकिन अब हमें सद्गुरु की कृपा से यह ज्ञान प्राप्त हो गया है कि “ मैं अनित्य देह नहीं हूँ, परन्तु शाश्वत आत्मा हूँ । इसलिए अब मुझे इस शरीर और अनित्य संसार से दूर आत्मकल्याण में लगाना चाहिए । तपद्वारा कर्मों की निर्जरा करके मुक्ति प्राप्ति का उपाय करना चाहिए । ” महाराज विद्युच्चर के इन उपदेशों का बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ा । अनेक लोग उनके साथ दीक्षित हुए और अनेकों ने संयम के व्रत धारण किये ।

लोगों ने देखा कि सभी भौतिक सम्प्रदायों का भोग करने वाली देह जंगल के पथ पर प्रयाण कर रही है । अनेक लोग उनका अनुशरण कर रहे थे ।

महाराज विद्युच्चर ने अपने संग के साथ अनेक प्रदेशों में विहार किया । अपने शास्त्रज्ञान और उपदेशों से सैकड़ों प्राणियों को सन्मार्ग दिखाकर उन्हें वैराग्य की ओर प्रेरित किया । वे स्वयं कठोर साधना द्वारा कर्मों का क्षय करते रहे । तपाराधना, संयम और साधना से उन्हें अनेक सिद्धियाँ स्वयंभू प्राप्त हुई । उनकी आत्मा उत्तरोत्तर कर्म की मलिनता से घुलकर पवित्र बनती गई ।



“महाराज आप नगर में प्रवेश न करें । ” चामुण्डा देवी ने तामलितपुरी

में ससंघ प्रवेश करते हुए मुनि विद्युच्चर को रोका ।

“ देवी आप कौन है ? और मुझे क्यों रोक रहीं है ? मैं तो अहिंसा का सन्देशवाहक हूँ । जिनेन्द्र भगवान का अनुयायी हूँ । मुझसे आपको क्या कष्ट होगा । ” मुनि महाराज ने वहाँ खड़ी ,रोकने वाली स्त्री से पूछा ।

“मैं चामुण्डा देवी हूँ , इस नगर में मेरी पूजा विधि हो रही है । इसलिए जबतक वह पूर्ण न हो जाए तबतक आप यहीं रुके । ” देवी ने परिचय देते हुए कहा ।

“देवी हम वीतराग प्रभु के अनुगामी हैं । हमारे प्रभु निर्ग्रन्थ , कषायरहित, समदृष्टा हैं । वे या उनके अनुयायी कभी किसी का अनिष्ट नहीं करते । फिर आप क्यों डर रही हैं । ” कहते-कहते महाराज ने अपने संघ सहित नगर में प्रवेश किया । और नगर के एकान्त स्थान पर बने उद्यान में रुके , और पवित्र दिनचर्या से कार्य करते हुए सामायिक करने लगे ।

महाराज विद्युच्चर के संघ सहित पधारने के समाचार सुनकर सभी लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे । लगभग पूरा नगर उद्यान की ओर ही उमड़ पड़ा । देवी के यज्ञादि हिंसात्मक यज्ञ में नहीवत् लोग रह गये । सारा मजा किरकिरा हो गया । इससे देवी के क्रोध की अग्नि भड़क उठी । उसने हिंसात्मक ढंग से बदला लेने का दुष्ट विचार किया । रौद्र ध्यान के कारण वह स्वयं क्रोध का अवतार लगने लगी । उसका भयावना , विकृत रूप देखकर लोग डर गये । मुनि पर उपसर्ग करके बदला लेने की भावना से उसने विशाल काय जहरीले डास, मच्छरों की सृष्टि की और मुनि महाराज पर छोड़ दिए । ये जहरीले कीड़े तप में आरूढ़ महाराज विद्युच्चर की देह को डँसने लगे । उनके पैने और विषैले डंक देह का रक्त पीने लगे । उस राक्षसीने इस पवित्र भूमि पर अनेक मांस के ताजे दुर्गन्ध युक्त टुकड़े बिखरा कर वातावरण दूषित किया । अफ़मी मैली विद्या से चारों ओर दुर्गन्ध फैला दी जिससे श्वास लेना भी दूभर होने लगा । तपस्या रत महाराज का दम घुटने लगा ।

महाराज विद्युच्चर ने अपने योग-बल से इस उपसर्ग की जानकारी प्राप्त

की । यद्यपि तप द्वारा उन्हें अनेक शक्तियाँ प्राप्त हो चुकी थीं । पर वे उनका उपयोग अपने निजी बचाव या स्वार्थ के लिए नहीं करना चाहते थे । जैनसाधु कभी भी अपनी अतिशयपूर्ण विद्या का प्रयोग अपने स्वार्थ के लिए नहीं करता । ऐसे संकट के समय वह वीतरागता का परम धारी बनकर स्वेच्छामृत्यु अर्थात् सल्लेखना , धारण कर लेता है । इस मृत्यु के वरण में कहीं कोई कषाय भाव नहीं होता है । उल्टे उपसर्ग कर्ता के प्रति समदृष्टि ही बनती है ।

महाराज विद्युच्चर ने इसे अपने ऊपर आये उपसर्ग को मानकर , साधुजीवन की परीक्षण की घड़ी मानकर सल्लेखना धारण कर ली एवं पूर्ण रूपेण आत्मा में स्थिर हो गये । वे देह से देहतीत हो गये । अब उन्हें महसूस ही नहीं हो रहा था कि उनकी देह पर कोई कष्ट भी हो रहा है । ज्यों—ज्यों जहरीले कीड़े उन्हें डँसते त्यों—त्यों वे और अधिक देह से ममत्व मुक्त होते जाते । शरीर पर लाखों डंख के घांव हो गये । शरीर से रक्त की उष्ण—धारा बहने लगी । कई स्थानों से माँस के लोथड़े टपकने लगे । इस विभत्स दृश्य को देखकर दुष्ट देवी अट्टहास्य कर रही थी । उसे बदला लेने का संतोष हो रहा था । महाराज विद्युच्चर की देह क्षीण होती जा रही थी । पर चेहरे पर जैसे प्रकाशपुंज का वृत्त जगमगा रहा था । आखिर देवी और उसके जहरीले कीड़े भी थक गये । मुनि विद्युच्चर इस नश्वर देह को त्याग कर शुक्ल ध्यान में मुक्ति लक्ष्मी के स्वामी बने । वे मुक्त होकर जन्म मरण के दुःख से छूट गये ।

महाराज विद्युच्चर के इस निर्वाण से देवता भी गीत गा रहे थे । नश्वरदेह धरा पर था पर आत्मा मोक्षमें विराजमान थी ।

आखिर थक कर, अपने कुकृत्य का भार लेकर जन्म—मरण के दुःखों का भार लेकर देवी भी भाग गई ।



समन्तभद्राचार्य

“कर्मों का फल हर मनुष्य को भोगना ही पड़ता है । अरे तीर्थंकर भी इससे नहीं बच सके ! यह तो मेरे ही पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों का फल है कि मुझे इस मुनि वेश में भी ये कष्ट भोगने पड़ रहे हैं । यह असातावेदनीय कर्म का ही उदय है कि मैं भस्मक व्याधि से पीड़ित हो रहा हूँ । धर्मसाधना के लिए एक ही बार रूखा सूखा भोजन करने वाला मैं भूख के पन्जे में फंस गया हूँ । जो भी खाता हूँ , भस्म हो जाता है , और भूख ही लगी रहती है । मेरा चित्त ध्यान में लगने के वजाय भूख में ही लगा रहता है ।” इस प्रकार अपनी व्याधि पर चिन्तन कर रहे थे मुनि समन्तभद्र ।

दक्षिण भारत के काशी कहे जाने वाले नगर कांची में धर्मनिष्ठ परिवार में जन्मे , जैन संस्कारों में पले, समन्तभद्र बाल ब्रह्मचारी तपस्वी थे । छोटी सी उम्र में ही आपने जैनदर्शन , न्याय , व्याकरण और साहित्य का गहन अध्ययन किया । ज्ञान के साथ चारित्र्य धारण कर मुनि दीक्षा लेकर तपस्वी मुनि बन गए । ज्ञान और चरित्र का सुभग मिलन आपके व्यक्तित्व की विशेषता थी । समन्तभद्र के ज्ञान और चारित्र्य से जैन धर्म और साहित्य की महती प्रभावना बढ़ी । आपके उपदेशों से अनेक लोग जीवन के सत्य को समझकर आत्म साधना में लीन हुए । समन्तभद्र ने विपुल साहित्य की रचना की । श्रावक अपने कर्तव्यों से विमुख न हो , अतः उनके उत्तम आचरण के लिए “रत्नकरण्ड श्रावकाचार्य ” जैसे ग्रन्थ की रचना की । यह ग्रन्थ श्रावक के लिए आचरण की गीता है । ऐसे महान मुनि समन्तभद्राचार्य शरीरिक व्याधि से त्रस्त थे । यह सत्य है कि वे शरीर की व्याधि से त्रस्त थें, परन्तु उनका मन कही भी कमजोर नहीं था । वे आत्मचिन्तन में अधिकाधिक व्यस्त रहने का प्रयत्न करते , परन्तु शरीर की पीड़ा उन्हें स्थिर न रहने देती । उनकी साधना में विश्लेष पड़ता । यही चिन्ता उन्हें सताती रहती । इसी चिन्तन में वे उदास होकर अपने पाप कर्मों के उदय की आत्मालोचना करते ।

“इस व्याधि से मुक्ति का एक ही उपाय है कि मैं सल्लेखना धारण कर इस देह को ही छोड़ दूँ ।” इस प्रकार चिन्तन में डूबे हुए समन्तभद्राचार्य को आधी रात तक नींद नहीं आयी वे, निरन्तर सोचते कि मैं मेरे पास अब सल्लेखना के सिवाय कोई उपचार नहीं है । इसी सोच में उन्हें एक झपकी सी लग गई । उन्हें उस समय ऐसा लगा ,जैसे कोई उनके कानों में कह रहा है— “समन्तभद्राचार्य अभी तुम युवा हो । तुम्हारा उत्तमचरित्र लोगो के लिए प्रेरणा स्वरूप है । अभी जैनधर्म और साहित्य को तुमसे बहुत अपेक्षाएँ हैं । तुम्हें अपने बुद्धि कौशल से उत्तम साहित्य का सृजन करना है । अतः अभी सल्लेखना धारण करने की आवश्यकता नहीं है । तुम्हें अपनी व्याधि का उपचार करना होगा, चाहे इसके लिए तुम्हें दीक्षा का छेद ही क्यों न करने पड़े ? जब तुम व्याधि से मुक्ति हो जाओ,तो पुनः दीक्षा ग्रहण कर लेना । ”

“ लेकिन यह छल है । शरीर के सुख के लिए मैं जिनेश्वरी दीक्षा नहीं छोड़ सकता । ”

“समन्तभद्र मुनि महाराज आप अपनी दीक्षा का छेद अपने स्वार्थ के लिए नहीं कर हैं । फिर आप आत्मा से विकारी नहीं हो रहे हैं । आपका यह कार्य हजारों प्राणियों की सेवा और पथदर्शन के लिए होगा । ” स्वप्न की आवाज में ये शब्द गूँज उठे ।

“एकाएक समन्तभद्राचार्य जाग उठे । देखा ,आसपास कोई नहीं है । उन्होंने ‘णमोकार मन्त्र’ का स्मरण किया और सोचने लगे अवश्य यह जिनशासन देवी का ही आह्वान था । या अवश्य यह मेरी आत्मा की आवाज थी ,जो मुझे विशाल जनहित में सल्लेखना से रोक रही है । यदि यही भवितव्य है तो फिर ऐसा ही हो । ” सोचते हुए मुनि जी ने मन ही मन कुछ विशेष निश्चय किया । पुनः सोचने लगे —“मुझे उत्तम पौष्टिक पकवान युक्त भोजन की विपुल मात्रा में आवश्यकता होगी । तभी मैं इस रोग से मुक्त हो सकूँगा । और उसके लिए मुझे छद्मवेश धारण करना पड़ेगा । ”



मुनि समन्तभद्र ने मुनि के नग्न वेश को त्याग कर वस्त्र धारण कर

लिये। इस परिवर्तन से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। लेकिन इसके अलावा और कुछ उपाय भी नहीं था। अब वे दिगम्बर जैन साधु की जगह वस्त्रधारी सन्यासी लग रहे थे।

मुनि समन्तभद्र उत्तम भोजन की प्राप्ति की खोज में कान्ची से निकलकर पुण्ड्रनगर में आए। इस नगर में बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार था। उनका मठ था, और बहुत बड़ी दानशाला थी।

“यह स्थान मेरे लिए उपयुक्त होगा। मुझे यहाँ पर्याप्त और उचित भोजन मिलेगा। मुझे यहाँ बौद्ध साधु के वेश में रहना पड़ेगा।” यह सोचते हुए समन्तभद्र ने बौद्ध साधु का वेश धारण किया और दानशाला में प्रवेश किया। वहाँ कुछ दिन रहे, परन्तु वहाँ भी उन्हें वह योग्य भोजन नहीं मिला, जो उनकी व्याधि को शान्त कर सके। अतः कुछ दिनों में ही उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया। अनेक स्थानों में उन्होंने अनेक प्रयत्न किए, परन्तु उनकी व्याधि—आकांक्षा कही पूर्ण नहीं हुई। वे देशाटन करते हुए दशपुर मन्दोसोर में आये। यहाँ पर वैष्णवों का विशाल मठ देखा। और वे सोचने लगे कि—“यह मठ भागवत सम्प्रदाय के वैष्णवों का है। यहाँ अवश्य माल मलीदा खाने को मिलेगा। मुझे वैष्णव साधु का स्वांग धारण करना पड़ेगा।” यही सोचकर उन्होंने बौद्ध साधु का वेश त्याग कर वैष्णव साधु का वेश धारण कर लिया। और महन्त के रूप में वैष्णव मठ में प्रवेश किया। वे जिस उद्देश्य से इस मठ में आये थे, वह उद्देश्य पूर्ण न हो सका। यद्यपि उन्हें अच्छा भोजन मिल रहा था। परन्तु वह पर्याप्त नहीं था। वहाँ से भी वे निकल कर देशाटन करते हुए बनारस नगरी में पहुँचे। बनारस जो विद्वानों की नगरी थी। जहाँ पर सैकड़ों शैव मंदिर थे। समन्तभद्राचार्य यद्यपि छद्मवेशी रूप धारण कर साधुवेश में घूमते रहते। परन्तु उनका मन निरन्तर पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लगा रहता। भूख के रोग से वे परेशान तो थे ही।

एक दिन नगर में घूमते-घूमते विशाल शिव मंदिर के निकट पहुँचे। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि मंदिर का निर्माण बनारस के महाराज शिवकोटी ने करवाया है। मंदिर अति भव्य था। जिसके कंगूरें वास्तु कला का उत्तम नमूना था। जिसके कलश की स्वर्णिम आभा गगन को चूम रही थी। वर्षों की

शिल्पियों की तपस्या साकार हो उठी थी । विशाल मंदिर नयनाभिराम और चित्त को प्रसन्न करने वाला था । मंदिर को देखते ही आँखें कला के दर्शन में ही स्थिर हो जातीं। विशाल रंग मंडप में बने शिवलीला के चित्र मनोहरी थे । विशाल नान्दी को देखकर लगता था कि अभी खड़ा हो जायेगा । गर्भगृह में विशाल शिवलिंग प्रस्थापित था । जिस पर त्रिपुण्ड जगमगा रहा था । लिंग के ऊपर बंधे हुए कलश से निरन्तर जल धारा का वर्षण हो रहा था । विलिपत्र और आक के पुष्प भक्तों द्वारा लिंग पर श्रद्धा से चढ़ाये जा रहे थे । मधुर घण्टनाद और शंखध्वनि गूंज रही थी । भक्त गण शिवमहिमा स्रोत का सुरीले गंठ से गान कर रहे थे । मंदिर के गर्भगृह में अनेक पकवान मिष्ठान , फल ,मेवों के थाल सजे हुए थे । इन थालों को देखकर समन्तभद्र के मन में यह विचार कौंधा -“यदि मुझे इस मंदिर में रहने का अवसर मिल जाए तो निश्चित रूप से मुझे आवश्यक भोजन प्राप्त हो सकेगा । और मैं रोग -मुक्त हो सकूँगा ।”

समन्तभद्र ने लोगो से पूछ कर यह जान लिया कि इस मंदिर का निर्माण महाराज शिवकोटी ने कराया है । प्रसाद के थाल भी राज भवन से आते हैं ।

पूजन के पश्चात भगवान को भोग लगाने के बाद पुजारी समस्त पकवान, फल ,मेवे बाहर लाया और उपस्थित भक्तों को प्रसाद के रूप में थोड़ा थोड़ा बाँटने लगा । थोड़े से प्रसाद से समन्तभद्र की क्षुधा कैसे शान्त होती ? इतना प्रसाद तो उनके लिए वैसे ही था ,जैसे ऊँट के मुँह में जीरा । उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि से मन ही मन में एक तरकीब सोचकर पुजारी जी से कहा-“पुजारी जी क्या आप लोगों में से भगवान शिव का कोई ऐसा परम भक्त नहीं है जो भगवान शिव को यह समस्त प्रसाद खिलवादे । ”

“हमने तो ऐसा न आज तक देखा है और न सुना है । अरे भाई क्या मूर्तिरूप भगवान कभी प्रसाद खाते हैं । ” पुजारी ने जिज्ञासा और आश्चर्य से पूछा ।

“क्यों नहीं । यदि हमारी भक्ति सच्ची है तो भगवान को साक्षात् भोजन को आरोगना ही पड़ेगा । समन्तभद्र ने पूरी दृढ़ता से अपने कथन की सच्चाई साबित करने के लिए जोर से कहा ।

इस नये आगन्तुक की बात और बात कहने दृढ़ता देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित हो गए । आज तक कभी किसी ने ऐसा देखा सुना नहीं था कि

पत्थर की मूर्ति भी मनुष्य की तरह भोजन करती है । सभी भक्तगण वहीं-खड़े रहे कि देखें क्या कौतुक होता है ।

“महाराज हम लोग वर्षों से अनेक मंदिरों में पुजारी के रूप में भगवान की पूजा करते रहे हैं ,पर कभी मूर्ति को न खाते देखा है और न खिला ही सके हैं । क्या आप में यह शक्ति है ? ” समन्तभद्र को भगवा वस्त्रों में साधुरूप में देखकर प्रमुख पुजारी ने उन्हें कोई महन्त समझकर उनसे प्रश्न किया ।

“क्यों नहीं मैंने अनेक बार भगवान को भोग खिलाया है । मैं निश्चित रूप से भगवान शिव को पूरे का पूरा प्रसाद खिला सकता हूँ ।” अधिक दृढ़ता से अपना रोब जमाते हुए समन्तभद्र ने कहा ।

“ठीक है । कल आप ही भगवान को प्रसाद खिलाना । ”चलो महाराज शिवकोटी से आप जैसे सिद्ध महन्त का परिचय कराया जाय ।



“महाराज की जय हो । शिवमंदिर के प्रमुख पुजारी जी दर्शन के इच्छुक हैं । ”मंत्री ने नतमस्तक होते हुए महाराज से निवेदन किया ।

“जाओ ,उन्हें आदर सहित ले आओ। ” महाराज शिवकोटी ने सैनिक को आदेश दिया ।

कुछ क्षण पश्चात मंदिर के प्रमुख पुजारी ,महन्त-वेशधारी समन्तभद्र को लेकर महाराज के सामने उपस्थित हुए ।

“कहिए पुजारी जी ,कैसे आना हुआ ? आप के साथ ये महन्त जी कौन है ? इन्हें क्यों कष्ट दिया ? ” महाराज ने आगन्तुक को देखकर प्रश्न किया ।

“महाराज मैं इन महन्तजी को जानता तो नहीं हूँ, परन्तु इनका यह दावा है कि ये भगवान शिव को वह सारा प्रसाद खिला देंगे ,जो चढ़ावे के रूप में भेजा जाता है । ” इतना कहकर पुजारी जी ने वह सारी घटना सुना दी । जो कल शाम उन लोगो के बीच चर्चा हुई थी ।

महाराज भी इस बात को सुनकर आश्चर्य चकित हुए और उपस्थित मन्त्रिगण भी आश्चर्य से देखने लगे । सब के चेहरे पर अविश्वास की लकीरें

उभर आई । उन लोगों को विस्मय में देखकर समन्तभद्र ने कहा —“महाराज , मन्त्रिगण और पुजारी जी! आप लोगों को मेरी बात पर विस्मय हो रहा है ,जो मैं आपके चेहरे पर पढ़ रहा हूँ । पर मैं सत्य कह रहा हूँ । मुझे आश्चर्य होता है कि भगवान के नाम पर प्रस्तुत दिव्य प्रसाद महादेव जी को न खिलाकर आप सब लोग खा जाते हैं । अरे जिस भगवान के लिए यह उत्तम प्रसाद बनाया जाता है ,वही उस से वंचित रह जाता है । यह तो सरासर स्वार्थ है । ”

“तो क्या महाराज आप साक्षात् महादेव जी को बुलाकर यह प्रसाद ग्रहण करा सकेंगे ? ” महाराज शिवकोटी ने जिज्ञासा से पूछा ।

“अवश्य महाराज । ” समन्तभद्र ने उसी दृढ़ता से कहा ।

इस अभूतपूर्व बात को सुनकर महाराज ने परीक्षण करने हेतु आज रोज से अधिक स्वादिष्ट भोजन के थाल तैयार करवाकर मंदिर में पहुँचाये । महाराज ने महन्त जी से शिवमूर्ति को प्रसाद खिलाने का आह्वान किया ।

“ठीक है । आप लोग सम्पूर्ण थाल गर्भगृह में रखवाइये । और हाँ , ध्यान रहे गर्भगृह के कबाट बन्द कर दिये जाएँगे । कोई भी किसी प्रकार की ताक-झांक नहीं करेगा । मैं अपनी योगसाधना से शिवजी का आह्वान करूँगा । उन्हें अपने हाथों प्रसाद खिलाऊँगा । यदि कोई यत्किञ्चित शंका करके विघ्न बनेगा तो शिवजी अप्रसन्न होंगे और इससे राज्य पर बहुत बड़ा संकट भी आ सकता है । ” इस प्रकार अपनी धाक जमाने के लिए समन्तभद्र ने दृढ़ता से आदेश दिया ।

नये महन्त के कहने का तरीका , वाणी की दृढ़ता और आँखों की चमक देखकर सभी लोग गंभीर हो गए । अभी तक भगवान को साक्षात् भोजन कराने की बात को मात्र मजाक समझने वाले राजा मन्त्री और पुजारी भी —‘राज्य पर अनिष्ट हो जायेगा । ’ इन शब्दों से भयभीत हो गए । और उन्होंने वह सब कुछ स्वीकार कर लिया जो महन्त जी ने कहा था ।

महन्त जी के आदेशानुसार प्रसाद के सभी थाल शिवजी के गर्भगृह में पहुँचा दिये गए और पट बन्द कर दिये गए । महन्त जी अन्दर चले गये । महाराज सहित सभी लोग बाहर इस घटना की सत्ययता जानने की प्रतीक्षा में बाहर रुक गये ।

समन्तभद्र ने महीनों के बाद ऐसा मिष्ठान पकवान ,फल और मेवे बड़ी

रूचि लेकर खाये । देखते ही देखते कुछ ही देर में वे सभी थालों का भोजन अपने उदर में स्वाहा कर गये । पहलीबार उन्हें तृप्ति-कर भोजन मिला । मीठी डकार लेकर उन्होंने दरवाजे खोले । आश्चर्य चकित होकर महाराज शिवकोटी, पुजारी जी और उपस्थित जनसमूह ने देखा कि सचमुच सभी थाल खाली थे । इस चमत्कार को देख कर महाराज शिवकोटी महन्त जी के चरणों में नतमस्तक हो गए । पुजारी जी तो उनके चरणों में लेट गये । जनता महन्त जी का जय-जयकार करते हुए उनके चरणों का स्पर्श करने लगी । महाराज ने उसी समय नये महन्त जी को शिवमंदिर का प्रधान महन्त और पुजारी घोषित कर दिया ।

महन्त समन्तभद्र यही तो चाहते थे । वे मंदिर के प्रधान पुजारी बनकर प्रतिदिन आये हुए भोजन को पेट भरकर खाते और अपने भस्मक रोग को संतुष्ट करते । देखते देखते छह महीने गुजर गए । इन छह महीनों में प्रतिदिन पर्याप्त भोजन प्राप्त होने से समन्तभद्र का रोग धीरे धीरे शान्त होने लगा । शरीर की स्थिति यथावत बनने लगी । समन्तभद्र रोग-मुक्त हो गए । परन्तु एक समस्या खड़ी हुई कि अब पूरा भोजन करना असम्भव हो गया । इससे भोजन बचने लगा ।

“महन्तजी क्या बात है अब भगवान बहुत कम भोजन करने लगे हैं ? बचे हुए अन्न को देखकर पुजारी ने पूछा ।

“पूजारीजी यह भगवान शिव की माया है । कल शंभू ने मुझसे कहा कि वे महाराज शिवकोटी की सेवा से अतिप्रसन्न हैं । अब वे पूर्ण तृप्त है अतः अब प्रसाद भक्तों में बांट देने को कहा है । ” बात बनाते हुए महन्त समन्तभद्र ने पुजारी को समझाया ।

पुजारी की समझ में कुछ नहीं आया । उसने यह हाल जानकर महाराज शिवकोटी को सुनाया । महाराज शिवकोटी ने अपने मंत्रीप्रवर से सलाह ली । पश्चात तय किया कि- “जब तक हम तथ्य और सत्य का पता न लगा लें , तब तक महन्तजी से कुछ न कहे । न ही ऐसा आभास होने दें कि हम उनकी जासूसी कर रहे हैं । पर अब पता लगाना जरूरी है कि ये महन्त जी प्रसाद के थाल गर्भगृह में रखवा कर , पट बंद करके अंदर क्या करते हैं । कैसे शिवजी को भोग लगाते है ? ”

एक दिन युक्ति प्रयुक्ति से जब महन्त समन्तभद्र कहीं बाहर गये हुए थे ।

अभी प्रसाद चढ़ाने में बहुत समय शेष था । तभी चालाकी से एक लड़के को उस नाली में छिपा दिया जिससे लिंग पर किये गये अभिषेक का जल निकलता था । नाली को इस तरह पत्तों से आच्छादित कर दिया कि किसी को कोई शंका न हो ।

यथा समय पूजन के साथ पकवान के भरे हुए थाल लाये गये । उन्हें गर्भगृह में रख दिए गये । प्रतिदिन की भाँति महन्तजी ने गर्भगृह के पट बंद कर दिये । अंदर अपने नित्यकर्म की तरह पकवान स्वयं खाने लगे । उनकी यह लीला नाली में छिपा लड़का देख ही रहा था । थोड़े समय पश्चात अधिकांश बचा हुआ मिष्ठान पकवान के थाल लेकर वे प्रसाद के रूप में बाँटने के लिए दरवाजा खोलकर बाहर आये तो देखा आज स्वयं महाराज शिवकोटी एवं अनेक अधिकारीगण व लोग उपस्थित हैं । इन सबको देखकर महन्तजी एक क्षण को तो संकम्पका ही गये । पर तुरन्त स्वस्थ हो कर प्रसाद बाँटने लगे । उनका मन आशंका से भर गया । सोचने लगे — “कहीं मेरा राज तो नहीं खुल गया ? कहीं राजाको सच का पता तो नहीं चल गया ? अनेक शंकाएँ उनके मन में उठने लगी ।”

“ लीजिए महाराज प्रसाद ग्रहण कीजिए । महाराज शिवकोटी को प्रसाद देने को महन्त समन्तभद्र ने थाल आगे किया ।

“क्यों महन्तजी क्या हमारे शिवजी अब कुछ नहीं खाते । अरे देखो ये थाल की सामग्री तो ज्यों की त्यों लगती है । क्या शिवजी पूर्ण रूप से तृप्त हो गये । ” महाराज ने जिज्ञासा से पूछा ।

“महाराज ये क्या कहेंगे ये तो महाधूर्त व झूठ हैं । सच यह है कि ये स्वयं भोजन खा लेते हैं और शिवजी का नाम बदनाम करते हैं । ” नाली से छिपा हुआ लड़का बाहर आकर जो देखा था उसका बयान करने लगा ।

महन्त समन्तभद्र का मुहँ खुला ही रह गया । महाराज इस धूर्तता से क्रोधाग्नि में तमतमाने लगे ।

“महाराज मुझे तो पहले से ही यह धूर्तता लगती थी । पर इसने अपने वाक्जाल में फाँस कर राज्यका अनिष्ट हो जायेगा — ऐसा भय बता कर हमें मौन कर दिया था । इसने शिवजी का अपमान किया है । प्रसाद को जूठा किया है । ” पुजारी ने अपने मन की भड़ास निकालते हुए कहा ।

“महाराज एक बात और यह कभी शिवजी को नमस्कार भी नहीं करता लगता है यह कोई विधर्मी है । किसी छलछद्म के कारण ही यह यहाँ यह पापकर्म कर रहा है । ” एक ब्राह्मण ने महाराज से कहा

“हाँ-हाँ यह शैव नहीं है । महाराज इसे आज्ञा दें कि यह भगवान शिवलिंग को वंदन करे । तभी सत्यका पता चलेगा ।” दूसरे ने महाराज को उकसाया ।

“ महन्त तुम महन्त के वेष में धूर्त हो । इससे पहले कि हम तुम्हें दंड दे तुम सत्य बताओ कि ऐसा तुमने क्यों किया ? तुम्हारा उद्देश्य क्या था ? तुम क्या सचमुच शैव हो ? तुम्हारा धर्म क्या है ? ” महाराज शिवकोटी ने क्रोध पर काबू प्राप्त करते हुए पूछा ।

महन्त समन्तभद्र ने महाराज के प्रश्नों का कोई उत्तर न दिया । वे मौन रहकर अन्तर में पंचपरमेष्ठी प्रभु एवं शासन देवी का ध्यान कर इस संकट से मुक्त होने का मार्ग ढूढ़ने में लग गये ।

महन्त समन्तभद्र का मौन महाराज शिवकोटी की क्रोधाग्नि को भड़काने में घी का काम करने लगा ।

“ धूर्त सच-सच बता कि तू किस धर्म का अवलंबी है ? तू शिवलिंग को नमन कर अन्यथा तुझे कड़ी से कड़ी धर्मद्रोह की सजा दी जायेगी । ” महाराज ने गरजते हुए आदेश दिया ।

“महाराज मैं शैव नहीं हूँ, यह सत्य है । पर ,आपके महादेव मेरा नमस्कार झेल नहीं पायेगे । मैं निग्रन्थ वीतरागी अर्हत् तीर्थंकरों का अनुयायी हूँ । राग-द्वेष संसार से पूर्ण विरक्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारी अष्टादश दोष से रहित ,केवल ज्ञान सूर्य से आलोकित हैं मेरे तीर्थंकर प्रभू । उनके अलावा मैं किसी के समक्ष मस्तक नहीं झुकाता । फिर मेरा नमस्कार सहने की शक्ति अन्य किसी रागी देव में है भी नहीं । ”समन्तभद्र ने निडरता से उत्तर दिया ।

“ तुम्हें यदि जान प्यारी है तो शिवलिंग को नमस्कार करो अन्यथा तुम्हारा वध किया जायेगा । ” महाराज ने पुनः मृत्यु का भय दिखाया ।

“ महाराज मृत्यु से मैं डरता नहीं । मृत्यु तो इस शरीर की होती है - आत्मा को अजर-अमर है । रही बात मृत्यु के भय की तो सुनिये महाराज - “भय-आशा-स्नेह एवं लोभ ” के वशीभूत होकर मैं कभी भगवान जिनेन्द्र के

अलावा किसी को नमस्कार नहीं कर सकता । उसी दृढ़ता से समन्तभद्राचार्य ने प्रत्युत्तर दिया ।

“ अभी भी सोच ले दुष्ट ढोंगी ! यदि तू शिवलिंग को नमस्कार नहीं करेगा तो तेरी मृत्यु निश्चित है । ”

“ महाराज आप उत्तेजित न हों मेरा नमस्कार यह शिवलिंग नहीं सह पायेगा । यदि मैंने नमस्कार किया तो आपका ही अनिष्ट होगा । ”

“ क्या होगा । धूर्तता की बातें मत कर । ”

“ महाराज मेर नमस्कार करते ही यह शिवलिंग खंडित हो जायेगा । ” समन्तभद्र ने स्पष्टता की ।

“ मुझे बेवकूफ बनाता है । ऐसे ही भगवान प्रसाद खाते हैं । कहकर तूने आँखों में धूल झोंकी थी । पर अब मैं तेरे वाक्जाल और माया में फँसने वाला नहीं हूँ । तू नमस्कार कर , जो होना होगा हम देख लेंगे । ” महाराज अपनी आज्ञा पर अटल रहकर बोले ।

“ ठीक है महाराज यदि आप चमत्कार देखना चाहते हैं तो मैं प्रस्तूत हूँ । कल प्रातःकाल आपको यह चमत्कार भी देखने को मिल जायेगा ! ” समन्तभद्र ने उसी आत्मविश्वास से उत्तर दिया ।

महाराज ने सुबह तक की मोहलत देकर मंदिर के चारों ओर नंगीतलवार लिये चुनंदा सैनिकों को लगाते हुए आदेश दिया —“सैनिकों मंदिर के पट बंद कर दो । इस महन्त को यहीं नजर कैद कर दो । ध्यान रहे यह रात्रि को कहीं भागने न पाये । यदि भागने कि कोशिश करे तो इसका शिरच्छेद कर देना । ” सैनिकों को आदेश देकर वे राजभवन लौट गये ।

शिवमंदिर में अकेले एकान्त में समन्तभद्राचार्य अनेक तर्क वितर्कों में उलझ गये । वे सोचने लगे —“मैंने महाराज से कह तो दिया पर अब क्या होगा । ” वे उसी समय पंचपरमेष्ठी के ध्यान में आरूढ़ हो गये । उनका चित्त एक मात्र भगवान के ध्यान में सिमट गया । कभी—कभी यह शंका की लहर भी उठती “यदि मेरे नमस्कार करने पर चमत्कार न हुआ तो मुझे अपनी मृत्यु का भय नहीं पर मेरे महान जिनधर्म की हँसी होगी । ” यह कल्पना उन्हें पीड़ा देने लगी । फिर सोचने लगे —“मेरा क्या ? भगवान मैंने तो तेरे ही आधार पर अपनी बात कही है । अब आप अपना विरुद्ध विचार कर स्वयं ही मेरा मार्ग

निष्कण्टक बनायें । मैं धर्म की शरण में हूँ । जो होना हो होगा । ” सोचकर वे पुनः ध्यान में लीन हो गये । उत्तम भावों से प्रभु की आराधना में खो गये ।

“हे आचार्य आँखें खोलो । आपकी जिनभक्ति इतनी पवित्र सच्ची है कि आपको भयभीत होने की शंका होने की कोई आवश्यकता नहीं । आप विश्वास रखें कि विजय आपकी ही होगी । जिनेन्द्र भगवान का भक्त कभी परास्त नहीं हो सकता । विजय सच्चे धर्म की ही होती है । आप निश्चित होकर चतुर्विंशति तीर्थकरों का “स्वयंभुवाभूत हितेन भूतले ” स्तवन रचकर उनकी स्तुति और स्मरण करें । इससे आपका कथन शत प्रतिशत सत्य होगा । शिवलिंग आपके नमस्कार करते ही फट जायेगा और उसमें से भगवान चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्रगट होगी ।” इतना कहकर मार्ग प्रशस्त करके देवी अंबिका अदृश्य हो गई ।

समन्तभद्राचार्य के ध्यानस्थ होनेपर उनके धर्म की हँसी न उड़े इससे अंबिका देवी का आसन कांप उठा था । इसीलिए वे स्वर्ग से चलकर समन्तभद्राचार्य को मार्ग प्रशस्त करने आई थी ।

“माँ आपने बड़ी कृपा की । अपने भक्त की लाज बचा ली । जिनधर्म की महिमा का गौरव बढ़ाने का मार्ग बताया । ” भावविभोर होकर समन्तभद्राचार्य प्रसन्नता से देवी अंबिका के चरणों में नमस्कार करने लगे । उनकी चिन्ता मिट गई । सरस्वती उनकी जीभ पर अवतरित हुई । वे अंबिका देवी के कथनानुसार स्तोत्र की रचना में लीन हो गये । भक्ति की तरंगे उठने लगीं । हृदय सागर डोलायमान हो गया । स्वर स्वयंभू अंतर से प्रस्फुटित होने लगे । चौबीस तीर्थकरों की स्तुति में डूबे समन्तभद्र महाराज ने ‘स्वयंभूस्तोत्र ’ की रचना की । रचना की पूर्णता उनके तन-मन को आह्लादित करने लगी । वे सुख और निश्चिंतता की नींद में सोये ।

परीक्षण का सूर्योदय हुआ । शिवमंदिर में महाराज शिवकोटी सहित विशाल जनसमूह ,विद्वान पंडित आदि एकत्र हो गये । राजा की आज्ञा से नजरकैद महन्त समन्तभद्र को गर्भ गृह से बाहर लाया गया । राजा आश्चर्य चकित रहे गये । समन्तभद्र के चेहरे की प्रसन्नता एवं आँखों की दृढ़तापूर्ण चमक देखकर ।

“कैसा विचित्र आदमी है ? मरण के मुखपर खड़ा है फिर भी चेहरे पर कोई भय या शंका नहीं । रोज से अधिक प्रफुल्लित लग रहा है । ”

समन्तभद्र जी राजा के सम्मुख खड़े हो गये । सभी लोग उन्हें आश्चर्य से देखने लगे । कईयों ने मन ही मन कहा कि —“अरे कितना युवा तेजस्वी महंत है । नाहक अपनी जिद में जान गँवाने के लिए तैयार हुआ है । अरे शिवमूर्ति को नमस्कार करके अपनी जान क्यों नहीं बचाता । क्या मूर्खता करने जा रहा है।”

“ अभी भी सोच लो महन्तजी । यदि मृत्यु से बचना चाहते हो तो अभी भी हमारी बात मान कर शिवलिंग को नमस्कार कर लो । ” महाराज ने पुनः समझाने के स्वर में कहा ।

अन्य उपस्थित विद्वानों एवं नागरिकों ने भी महाराज के कथन को दुहराया ।

“ठीक है तो आप अपनी शक्ति का परिचय दीजिए । ” समन्तभद्र को टस से मस न होते देख महाराज शिवकोटी ने कहा । महाराज की आज्ञा होते ही समन्तभद्राचार्य ने अपनी आँखें बन्द की । पंचपरमेष्ठी प्रभु का स्मरण और ध्यान किया । वे अपने इष्टदेव चन्द्रप्रभु के अतिशय का वर्णन करते हुए “चन्द्रप्रभु चन्द्रमरीचिगौरम् ” पद्यांश का सस्वर उच्चारण करने लगे । इस रचना के साथ जैसे ही उन्होंने शिवलिंग को नमस्कार किया—शिवलिंग विस्फोट के साथ फट गया । उसमें से श्री चन्द्रप्रभुभगवान की प्रतिमा प्रकट हुई ।

इस चमत्कार को देखकर सभी हक्के-बक्के रह गये । आश्चर्य में डूब गये । लोगों ने कंठ से चन्द्रप्रभु भगवान की जय ‘जैनधर्म की जय’ के नारे गूंजने लगे । लोग भावविभोर होकर समन्तभद्राचार्य के चरणों का स्पर्श करने लगे । स्वयं महाराज शिवकोटी उनके चरणों में नतमस्तक थे । पर इस सबका समन्तभद्र को ध्यान ही कहाँ था — वे तो तन-मन से समर्पित थे अपने आराध्य के चरणों में । वे देह में थे ही कहाँ ।

जब स्तोत्र पूरा हो गया । उन्होंने आँखें खोली ।

“महाराज । योगीराज हमें क्षमा करें । आपकी शक्ति प्रभाव देखर हम सब चकित हैं । ”

“राजन् यह मेरी शक्ति नहीं है । यह तो जैनदर्म की शक्ति और प्रभाव है।”

“आप इस मंदिर में शिवभक्त बनकर महन्तका रूप धारण कर क्यों रहे? यह रहस्य समझ में नहीं आया ।” राजा ने जिज्ञासा से पूछा ।

महाराज के पूछने पर समन्तभद्राचार्य ने अपने जीवन की वह पूरी कहानी सुना दी । कैसे वे रोग से पीड़ित थे और कैसे उसे दूर करने के लिए उन्हें यह सब करना पड़ा । अथ से इति तक की घटनाएँ सुनाते हुए कहा —

“राजन् मैंने इस शरीर के रोग से मुक्त होने के लिए सभी उपाय किए । पर आत्मा से परम पुनीत जैनधर्म का कभी भी त्याग नहीं किया । भय या ऐषणा से कभी कुदेव या सरागी देव की वंदना या निंदा नहीं की । मेरा कार्यपूर्ण हुआ । मैं पुनः अपने मूलवेष साधू वेष को धारण करता हूँ । कहते—कहते महन्त समन्तभद्र ने उसी समय वस्त्रों का त्याग करके पुनः दिगम्बर रूप धारण कर लिया ।”

इस वेष को देखकर राजा सहित सभी ने दिगम्बराचार्य समन्तभद्र जी को नमस्कार किया । महाराज ने जनसमूह को संबोधन करते हुए कहा —

“ राजन्! सभी उपस्थित धर्मप्रेमी भाईयों ! संसार क्षणिक है । हम निजी स्वार्थ , लोभ, भय के वशीभूत होकर सच्चे देव की पहिचान ही भूल जाते हैं । हम कुदेव या सुदेव , रागी और वीतरागी देव का भेद ही नहीं कर पाते । हमारी दृष्टि इतनी संकुचित हो जाती है कि हम लोभ के कारण भिखारी बनकर उस भगवान से कुछ न कुछ माँगते रहते हैं । भाई इतना समझ लो कि देह—धन आदि का सुख हमारे शुभ—अशुभ कर्मों का ही परिणाम है । सच्चा भगवान वीतरागी होता है । वह तो स्वयं संसार के वैभव को छोड़कर तप की अग्नि में तप कर जन्म—मरण से मुक्त होकर मोक्षगामी हो गया है । उसे न राग है न द्वेष । फिर वह देगा क्या और कैसे ? हमारी उपलब्धि और नुकशान ये सब हमारे ही कर्मों का फल होता है । जो हमें भोगना ही पड़ता है । जैसा मुझे भी भोगना पड़ा है । तीर्थकरों को

भी भोगना पड़ा है । विश्वास रखो कि हम स्वयं कर्मों के कर्ता हैं और भोक्ता भी । ऐसा नहीं है कि कर्म हम करें और परिणाम कोई और दे । जैनधर्म ही यह डंके की चोट कहता है कि मनुष्य ही कर्ता और भोक्ता है । मनुष्य की आत्मा में वह शक्ति है कि वह भी स्वयं भगवान अर्थात् सिद्ध की भाँति मोक्ष प्राप्त कर सकता है । हर प्राणी में मुक्ति—प्राप्ति की शक्ति है —यदि वह अपने कर्मों का क्षय अपने तप द्वारा करे तो ।”

भाईयों ! जैनधर्म किसी भी धर्म के प्रति असहिष्णु भी नहीं है । वह सबका आदर करता है । स्याद्वाददृष्टि उसकी सबसे महान समन्वयात्मक दृष्टि है । इसका अर्थ है कि सभी तथ्यों—सत्यों को जानकर परम सत्य तक पहुँचना क्योंकि सत्य शाश्वत होता है । आप लोग भी ईश्वर की आराधना मुक्ति के लिए करें —संसार के लिए नहीं । आप सब धर्म के प्रति आस्थावान बनें यही मेरा आशीर्वाद है ।

इस चमत्कार से एवं महाराज की अमृतवाणी से राजा शिवकोटी एवं सभी पर गहरा प्रभाव पड़ा । उन लोगों ने पुनीत जैनधर्म का स्वीकार किया । अनेक लोगो ने व्रत धारण किए । चमत्कार तो यह हुआ कि महाराज शिवकोटी ने स्वयं वैराग्य से प्रेरित होकर जिनेश्वरी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त करते हुए महाराज से दीक्षा देने की प्रार्थना की ।

सारे नगर में यह समाचार वायुवेग से फैल गया । हजारों लोग इस अनुपम दृश्य को देखने दौड़ पड़े । हजारों लोगों की उपस्थिति में महाराज शिवकोटी ने दिगम्बरी दीक्षा धारण की । वातावरण जयनाद से भर गया । उनके साथ सैकड़ों लोगों ने वैराग्य धारण किया ।

यही मुनि शिवकोटी शास्त्रों का अभ्यास कर महान विद्वान ,श्लोक रचियता बने । इनके ज्ञान और वाणी से अनेक लोगों का उपकार हुआ ।

लोगों ने देखा कि मुनि समन्तभद्र निराकार ,निर्विकार भाव से जंगल की ओर प्रयाण कर रहे हैं । बस अब तो शेष थी उनके चरणों की अमिट छाप ।

वारिषेण मुनि

“महाराज की जय हो । ” कहते हुए सिपाहियों के सरदार ने महाराज श्रेणिक के सामने सिर झुका दिया ।

“क्या बात है ,नायक ? घबड़ाये हुए क्यों लग रहे हो ? ” श्रेणिक महाराज ने पूछा ।

“महाराज हमें बड़े दुख के साथ आपके समक्ष । ”

“हाँ-हाँ कहो, क्यों रूक गये । ”

“महाराज श्री कीर्ति सेठ का बहुमूल्य रत्नों का हार कुमार वारिषेण से प्राप्त हुआ है । इसलिए हम राज्य के कानून के मुताबिक उन्हें बन्दी बनाकर आपके पास ले आये हैं । ” कहते-कहते रक्षक दल के नायक ने बन्दी बनाये गए वारिषेण कुमार को महाराज के सामने प्रस्तुत किया ।

अपने प्रिय पुत्र वारिषेण को इस प्रकार बन्दी अवस्था में देख कर महाराज श्रेणिक और महारानी चेलनी स्तब्ध रह गईं । उन्हें आश्चर्य हुआ कि “मगध का राजकुमार होने वाला शासक इतना नीच कार्य भी कर सकता है । जिस पुत्र को हमने अपनी आँखों का तारा समझा था ,जो हमारे हृदय का दुलारा था, वह इतनी गिरी हुई हरकत कर सकता है । ” इस कल्पना मात्र से महाराज का क्रोध बढ़ता जा रहा था ।

“बेटा तुमने ऐसा क्यों किया ? तुम्हें धन की क्या कमी है ? ” महारानी चेलनी ने वात्सल्य से वारिषेण से पूछा ।

“बोलो तुम्हारी क्या मजबूरी थी, जो तुम्हें चोरी करनी पड़ी ? ” महाराज श्रेणिक ने क्रोध को दबाते हुए वारिषेण से पूछा ।

वारिषेण नतमस्तक मौन खड़े थे । वे किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे थे । उन्हें खुद आश्चर्य था कि यह क्या हो रहा है । वे इसे अपने अशुभ कर्म का उदय मान कर मौन थे । उनका मौन महाराज के शक को निश्चय में बदल रहा था । उनका क्रोध और भी बढ़ रहा था । उन्होंने क्रोध-व्यंग से कहा -

“ क्यों बोलते नहीं हो ? तुम्हारा यह मौन तुम्हें चोर ठहरा रहा है । बड़े

शर्म की बात है ,तुम हम लोगो की आँखों में यह धूल झोंकते रहे कि तुम बड़े धर्मात्मा हो । तुमने श्मशान में जाकर ध्यान और तप का ढोंग रचाया । सब लोगों में यह विश्वास भर दिया कि तुम्हें किशोरवस्था में ही आत्मचिन्तन की चाह है । यौवन में जब सभी भोग-विलासों की ओर दौड़ते हैं, उस समय तुमने संयम की साधना से अपने आपको आत्मा की ओर मोड़ दिया है । इस प्रकार के विश्वास की आड़ में तुमने यह चोरी का नया घृणापूर्ण कार्य प्रारम्भ कर दिया ?”

महाराज के इतने व्यंगपूर्ण कथन को और भर्त्सना को वारिषेण उसी शांत भाव से मौन रहकर सुनते रहे ।

“बेटा वारिषेण हम सब को तुम्हारे तप,त्याग और चारित्र पर बड़ा गौरव था । सारे राज्य में तुम्हारे शील स्वभाव की, वाणी की ,नम्रता और सद्चारित्र की ,चर्चा ही नहीं ,उदाहरण भी प्रस्तुत किये जाते हैं ; फिर यह सब कैसे हो गया ? ” रानी चेलनी ने पुनः पुत्र को समझाते हुए सत्य को जानने की चेष्टा की ।

वारिषेण कुमार फिर भी मौन थे । वे तो बस भगवान जिनेन्द्र का स्मरण कर रहे थे । इस घटना को उपसर्ग जानकर मौन थे ।

कमरे में मौन छा गया । सभी अप्रत्याशित घटना से स्तब्ध थे । वारिषेण को बन्दी बनाकर लाये हुए सैनिक , महारानी चेलना,सभी महाराज के तमतमाये हुए चेहरे को देखकर किसी आगत अनिष्ट की कल्पना से भयभीत थे ।

वारिषेण कुमार श्री कीर्ति सेठ का हार चुराने के अपराध में बन्दी बना लिये गए हैं । यह समाचार वायुवेग से राजभवन के कक्ष से बाहर दुर्ग के प्राचीरों को लांघ कर पूरे राजगृही में फैल गया था । जो भी सुनता वह आश्चर्य में डूब जाता, और जितने मुँह ,उतनी बातें हो रही थीं ।

“ऐसा नहीं हो सकता । राजकुमार को धन की क्या कमी है ? अवश्य यह कोई षड्यन्त्र है । ” एक नागरिक कह रहा था ।

“भाई सब कुछ संभव है । धन का लोभ किसे नहीं होता ? ” दूसरे ने कहा ।

“लेकिन भाई वापिषेण तो बड़े ही नेक चरित्र युवराज हैं । वे तो यौवन के वसन्त काल में भी श्मशान में जाकर कायोत्सर्ग करते हैं । ऐसे निस्पृही को चोरी से क्या प्रयोजन ? ” एक नागरिक ने कहा ।

“ ये सब ढोंग है । तप की आड़ में यह चौर्यकार्य करने का नया तरीका है । ” एक नागरिक ने व्यंग से कहा ।

“भाई राजकुमार है । उन्होंने सोचा होगा कि वे राजा के पुत्र हैं ,उन्हें कौन सजा दे सकता है , इसलिए ऐसी मनमानी व्यक्त करने लगे थे । ” उपस्थित एक व्यक्ति ने विचार व्यक्त किये ।

“अब सोचते हैं कि महाराज क्या न्याय करते हैं । पुत्र प्रेम कहीं न्याय पर हावी न हो जाये । ”

“ भाई क्या समय आ गया है । रक्षक ही भक्षक बन गया है । कल जिसे राजा बनना है ,वह यदि चोर होगा तो प्रजा का क्या कल्याण करेगा , और क्या रक्षा करेगा ? ”एक अनुभवी नागरिक ने चिन्ता व्यक्त की ।

पूरे नगर के हर चौक ,हर गली में यही चर्चा छायी हुई थी ।

महाराज श्रेणिक ने देखा कि वारिषेण कुमार कुछ उत्तर नहीं दे रहे हैं । तो उन्होंने गरजते हुए आदेश दिया -“सैनिकों इस दुष्ट ,धोखेबाज चोर ,कुलकलंकी को वही सजा दो ,जो जिसके लिए उचित है । लोगो को भी यह उदाहरण मिले कि इस राज्य में चोरी की क्या सजा हो सकती है । इसे मैं प्राणदण्ड की सजा देता हूँ । ले जाओ और इसका सिरच्छेद कर दो । ”

महाराज के इस कठोर दण्ड को सुनकर महारानी चेलनी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी । उपस्थित सैनिकों के दिल भी कांप उठे । लेकिन वारिषेण कुमार के चेहरे पर भय का नामोनिशान तक नहीं था । सैनिकों को आज्ञा पालन के अलावा कोई चारा भी नहीं था । वे बन्दी राजकुमार को कक्ष से बाहर वधस्तम्भ की ओर ले चले । महाराज श्रेणिक अभी भी क्रोध और क्षोभ से बड़बड़ा रहे थे -“कैसा कुल कलंकी बेटा पैदा हुआ । धर्मात्मा का ढोंग करता रहा । जिसे मैं सिंहासन पर बैठा कर राज्य की बागडोर सौंपना चाहता था । वह ऐसा दुराचारी होगा । इसकी कल्पना भी नहीं थी । ”

महाराज का क्रोध धीरे-धीरे आत्म ग्लानि में परिवर्तित हो रहा था । वे सोचते -“महारे लालन-पालन में ऐसी क्या कमी रह गई जो हमारे बेटे को चोरी करनी पड़ी । महारानी चेलनी के संस्कार ,जैनधर्म के प्रति उसकी श्रद्धा यह सब कुछ क्या निरर्थक हुए । यह हमारे किन पाप कर्मों का उदय है कि हमारा राजकुमार ऐसा कृत्य करने लगा । क्या वह किसी कुसंगति में पड़ गया ? ”

इधर यह समाचार भी गली-गली में पहुँच गया कि महाराज श्रेणिक ने कुमार वारिषेण को मौत की सजा दी है। यह समाचार भी लोगो को उतना ही स्तब्ध और आश्चर्य में डालने वाला था जितना कि वारिषेण का चोरी का समाचार। कुछ लोग राजा की न्यायप्रियता की दुहाई दे रहे थे, कुछ लोग इस सजा को गुनाह के प्रमाण में अधिक मान रहे थे। गुनहगारों की दुनिया में सन्नाटा छा गया था।

महाराज की कठोर आज्ञा का पालन करने के लिए सैनिक वारिषेण को वध स्तम्भ पर लाये। वारिषेण कुमार सिर झुकाये णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए मौन खड़े थे। लगभग पूरा शहर वधस्तम्भ के चौक में इकट्ठा हो गया था। नर-नारी की भीड़ इतनी अधिक हो गई थी कि कंधे से कंधे छिल रहे थे। सुकुमार वारिषेण को देखकर औरतों की आँखों से आँसू बह रहे थे। वे रो-रो कर कह रही थीं कि वारिषेण ऐसा कृत्य नहीं कर सकता। महाराज को इतनी कड़ी सजा नहीं देनी चाहिए। आश्चर्य तो इस बात का था कि जो लोग वारिषेण के विषय में अनेक प्रकार की अनर्गल बातें कर रहे थे, वे भी वारिषेण कुमार के चेहरे की सौम्यता सरलता, निश्पृहता देखकर पिघल उठे थे। उनका मन भी बार-बार यही कह रहा था कि ऐसा भोला-भोला राजकुमार ऐसा दुष्कृत्य नहीं कर सकता। अवश्य कोई षड्यन्त्र या गलतफहमी है। कोई महाराज की जल्दबाजी में सुनाई गई सजा पर टिप्पणी कर रहा था, तो कोई पूरी जांच करनी चाहिए थी, ऐसा अभिप्राय व्यक्त कर रहा था। उपस्थित सभी जनमेदनी में वारिषेण कुमार के प्रति श्रद्धा और सुहानुभूति उमड़ने लगी थी। सभी की आँखे नम थी।

वध करने वाला जल्लाद आज पहली बार सोच रहा था – “हे प्रभु मुझे ऐसे नीच कर्म के लिए क्यों बनाया है। इतने कोमल, सरल कुमार को मारने का पाप मेरे सिर लगेगा। मेरा मन कहता है कि यह बालक निर्दोष है। मैं वर्षों से अनेक अपराधियों का वध कर चुका हूँ। परन्तु ऐसी वेदना मुझे कभी नहीं हुई। अपराधियों के चेहरों पर मैंने मृत्यु से पूर्व चेहरे पर भय की छाया देखी है। लेकिन इस राजकुमार के चेहरे पर भय की लकीर तक नहीं। चेहरा सौम्य है, आँखों में करुणा है।”

यह सब सोचने पर भी जल्लाद को अपना कर्तव्य निभाना ही था। उसने

धारदार तलवार को ऊपर उठाकर भरपूर जोर लगा कर वारिषेण की झुकी हुई गर्दन पर प्रहार किया। लोगों की आँखें इस प्रहार को देख न सकी। भय से बन्द हो गई। एक क्षण के लिए लोगो के हृदय की धड़कने ही रुक गई। लेकिन आश्चर्य कि तलवार का जोरदार आघात भी वारिषेण की गर्दन को काटना तो दूर, एक साधारण खरोंच भी न कर सका। गर्दन में फूलों की माला दमक उठी। जल्लाद ने दांतो तले अंगुली दबा ली। और सारी जनता में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वारिषेण अभी भी भगवान का स्मरण कर शान्तचित्त, सर झुकाये खड़े थे।

“हम तो पहले से ही कहते थे कि कुमार निर्दोष हैं। जरूर यह किसी की चाल है।” जो लोग कुमार को निर्दोष मान रहे थे वे अपने अनुमान की सत्यता सिद्ध कर रहे थे।

चारों ओर कुमार वारिषेण का जय-जयकार हो रहा था। प्रजा उनके दर्शनों को उमड़ रही थी। सभी लोग यही भाव व्यक्त कर रहे थे कि “सच्चाई कभी दब नहीं सकती। अरे यही तो सच्चे साधू के लक्षण हैं।”

“देखो कुमार के मुख पर कितनी शांति और नम्रता है।”

“हे कुमार तुम धन्य हो। तुम्हारी एवं तुम्हारे चरित्र की जितनी प्रशंसा की जाये कम है।”

“हे कुमार तुम सच्चे जिनभक्त हो। पवित्र हो।”

इस प्रकार अनेक लोग अनेक उत्तम विशेषणों से कुमार की प्रशंसा और स्तुति कर रहे थे।

यह समाचार जब महाराज श्रेणिक और रानी चेलनी ने सुना तो प्रसन्नता से भर उठे। रानी चेलनी तो राजघराने के समस्त नियमों-बन्धनों को तोड़ कर वधस्तंभ की ओर दौड़ी। उनके पीछे दास-दासी, रक्षक भी दौड़े। अरे! रानी को तो वस्त्र, आभूषण यहाँ तक कि पांव की जूतियाँ पहनने की भी सुध न रही। महाराज भी अपने अनुचरों, दरबारियों के साथ वधस्तंभ की तरफ गये। महाराज श्रेणिक ने देखा वधस्तंभ पर कुमार वारिषेण मौन, नतमस्तक प्रसन्न चित्त आँखें बन्द किए खड़े हैं। जल्लाद उनके चरणों में झुके हैं। अपार जन समूह कुमार की जय-जयकार कर रहा है।

महारानी चेलनी ने दौड़कर कुमार को अपनी बांहों में जकड़ लिया। वे बार-बार उनके मस्तक गालों को चूमने लगीं। अश्रु की धारा बह रही थी।

इस ममतामयी दृश्य को देखकर पूरा जनसमूह अश्रु से प्लावित हो रहा था । कठोर हृदय राजा भी अब वात्सल्यमयी पिता की भांति अश्रु बहा रहे थे । उन्होंने दौड़कर प्रियपुत्र को छाती से लगाकर कहा-

“प्रिय पुत्र तुम धन्य हो । क्रोध के वशीभूत होकर मैंने पूरी जांच पड़ताल किए बिना तुम्हें मृत्युदण्ड देने का अपराध किया है । तुम मेरे बेटे हो, पर आज मैं तुमसे क्षमा याचना करता हूँ । ”

“पिताजी ऐसा न कहें । मुझे पाप-पंक में न घसीटें । आप पूज्य हैं । राजा हैं । आपने कोई गलती नहीं की । वास्तव में आपने अपने कर्तव्य का पालन किया है । ” वारिषेण ने पिता के सामने नतमस्तक होकर कहा ।

“नहीं बेटे ! मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है । मेरा मन पश्चात से ,अपने कुकृत्य से जल रहा है । मैंने पापकर्म किया है । ”

“नहीं पिताजी आपने न्याय किया है । कोई पाप कर्म नहीं किया । हाँ,यदि पुत्र प्रेम के वशीभूत होकर आप मुझे दण्ड न देते तो अवश्य आप पर अन्यायी होने का पक्षपाती होने का दोषारोपण होता । उल्टे आपकी न्याप्रियता से जन-जन के हृदय में आपकी निष्पक्ष न्याय-प्रियता के कारण आपके प्रति आदर बढ़ा है ।आपने तो धर्म एवं न्याय प्रियता की प्रतिष्ठा बढ़ाई है । पिताजी आपने तो मुझे दंड देकर स्वयं को अन्याय के कलंक से बचाया है । आपको प्रसन्न होना चाहिए । ”

“बेटा मैं प्रसन्न तो हूँ तुम्हारी सच्चाई ,सद्चरित्र एवं सद्भावना से । पर लज्जित हूँ अपने आप से । ” पश्चाताप में डूबे महाराज ने पुनः आत्मग्लानि से कहा ।

“नहीं पिताजी ऐसा न कहें । यह तो मेरे ही पूर्व अशुभ कर्मों का प्रतिफल था । जिसके कारण निरपराधी होते हुए भी मुझे अपराधी बनना पड़ा । कर्मों का फल तो भोगना ही था । यह तो एक उपसर्ग ही था । पर ,आपके चरणों की कृपा से एवं जैनधर्म के प्रभाव से मैं उसमें से सफलता पूर्वक पार हो सका । ” कहते-कहते वारिषेण पिता के चरणों में झुक गया ।

कुमार वारिषेण के इस प्रकार के प्रभाव व धर्म के चमत्कार को देखकर चोर जिसके कारण वारिषेण पर यह संकट आया था । वह भयभीत हो गया ।

“महाराज मुझे क्षमा करें । मैं ही वह चोर हूँ । जिसके कारण कुमार को झूठे आरोप की सजा भुगतनी पड़ी । मेरा नाम विद्युत्चोर है । ” कहते-कहते विद्युत्चोर राजा श्रेणिक के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगा ।

“ अच्छा तुम्ही हो प्रसिद्ध विद्युत्चोर । यह घृष्टता तुमने क्यों की ? सच-सच बताओं तुम्हें अपने किए का दंड अवश्य दिया जाएगा । ” महाराज श्रेणिक ने क्रोध से पूछा ।

“महाराज मैं आपको सबकुछ बताता हूँ । आप जो भी सजा देंगे वह मुझे मंजूर होगी । श्रीमान ! मगधसुन्दरी वेश्या पर मुझे प्रीति थी । एक दिन वह उपवन में क्रीड़ा कर रही थी कि उसी समय उपवन में श्रीकीर्ति श्रेष्ठीवर भी अपनी भार्यासह पधारे थे । उनके गले में यह सुन्दर कीमती हार था । वेश्या का मन इस हार पर ललच उठा था । उसी शाम को उसने मुझसे कहा था —“ हे प्रिय तुम मुझसे सच्चा प्यार करते हो ? ”

“क्या इसमें तुम्हें शक है मेरी प्राणप्रिये ? ”

“क्या मेरे लिए कुछ भी कर सकते हो ? ”

“मैं स्वर्ग के तारे भी तोड़कर ला सकता हूँ । ”

“स्वर्ग के तारे रहने दो । पहले मुझे वह हार ला दो जो सेठ श्रीकीर्ति ने पहना था । यदि तुम वह हार ला दोगे तो मैं समझूँगी कि तुम मुझे सचमुच प्यार करते हो । ” कहते हुए मगधसुन्दरी ने अपनी त्रियाहठ मेरे समक्ष व्यक्त की थी ।

“मैं भी प्यार में अन्धा होकर अपनी चौर-विद्या पर अभिमान करता हुआ रात्रि के दूसरे पहर में यह कार्य सम्पन्न करने निकल पड़ा था । छुपते-छुपते मैं किसी तरह सेठजी के शयनकक्ष में पहुँचा था । फुर्ती से उनके गले से बड़ी सफाई से हार निकाल लिया था । इस समय लगभग रात्रिका तीसरा पहर बीत चुका था । मैं हार लेकर भागा पर हार की चमक और कदमों की आहट से

संत्रिओं ने मेरा पीछा किया । मैं आगे और वे पीछे । वे मेरे निकट पहुँच रहे थे । मैं आसन्न भय से भयभीत था । आज तक कभी भी कोई मुझे पकड़ नहीं सका था । पर ,इस बार मेरी जान संकट में फँसी थी । मैं दौड़ते-दौड़ते श्मशान के पास से गुजर रहा था । अपनी जान बचाने के लिए मैंने देखा श्मशान में ये राजकुमार कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानमग्न थे । मैंने हार इन्हीं के पास फेंक कर अपनी जान बचाई । मैं छिपकर देख रहा था कि इन्होंने इस हार की ओर देखा तक नहीं । संत्रीगण अवश्य इनके पास पहुँचे थे । इन्हें घेर लिया था । महाराज यही है सच्ची कहानी । अब आप जो सजा दी, मुझे दें । ” कहते हुए विद्युतचोर महाराज के चरणों में गिर कर गिड़गिड़ाते लगा ।

विद्युतचोर की सत्यबात सुनकर ,उसके चेहरे पर पश्चाताप के भाव एवं आँखों में अश्रु देखकर महाराज ने उसे क्षमा कर दिया । पुनः पुत्र की ओर मुड़कर बोले—“बेटे घर चलो । राज्य का कारभार सम्हालो । ”

“हाँ , बेटे चलो । ” माताने भी लाड़ से कहा ।

“पिताजी अब मुझे क्षमा करें । जब सैनिकों ने मुझे बन्दी बनाया था । जब मुझे वधस्तम्भ पर वध करने ले जा रहे थे, तभी मैंने भगवान जिनेन्द्र को साक्षी बनाकर यह नियम धारण कर लिया था कि यदि इस उपसर्ग से मुक्त हो गया तो संसार का त्याग कर जिनत्व के पथ पर चलूँगा । अतः अब मैं जिनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगा । ”

“बेटा यह क्या कह रहे हो ? तुम बड़े भोले हो, कोमल हो, अभी तुमने संसार में देखा ही क्या है ? मैं तुम्हारा ब्याह रचाऊँगा । बहू लाऊँगा । पौत्र खिलाऊँगा । बेटे घर चलो संसार के सुख भोगो । ” चलनी ने वारिषेण के गले से लगते हुए कहा ।

“हाँ बेटा राज्यका भार वहन करो । त्याग की उम्र तो मेरी है ।”महाराज ने भी आग्रह किया ।

“पिताजी माताजी अब यह संभव नहीं है । मैं अब देह के विवाह के स्थान पर आत्मा से विवाह करूँगा । मोक्ष लक्ष्मी का वरण करूँगा । माँ ! हर वह

बेटा तेरा ही बेटा होगा जो धर्मपथ पर आरूढ़ होगा । संसार में सुख है ही कहाँ ? यह तो सब सुखाभास है । संसार का सुख तो चतुर्गति में भ्रमण कराने वाला है । मैंने छोटे से जीवन में इस प्रकार के दुखों को जान लिया है । अब तो जिनेन्द्र भगवान के चरण ही मेरी मंजिल हैं । पिताजी त्याग के पथ पर उग्र की कोई महत्ता नहीं होती । राज्यसुख मैं नहीं चाहता । उसके लिए मेरे अन्य भाई हैं । मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप दोनों प्रेमपूर्वक मुझे आत्मकल्याण के पथ पर जाने की आज्ञा दें । ” वारिषेण ने विनय पूर्वक माता-पिता की आज्ञा चाही ।

महाराज श्रेणिक रानी चेलनी अवाक् ही थे । सारे नगरजन भी मौन स्तब्ध थे । यह क्या हो रहा है —उन्हें सब कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था ।

सभीने देखा राजकुमार वारिषेण अपने शरीर के बहुमूल्य वस्त्र ,आभूषण त्याग कर वन की ओर गमन कर रहे हैं । बस अब आकाश में गूँज रही थी — जैनधर्मकी जय, त्याग की जय ,वारिषेण की जय ध्वनि ।



तपस्वी वारिषेण मुनि की तप-कीर्ति चारों दिशाओं में फैल रही थी । उनके धर्मोपदेशों को सुनने के लिए लोग उमड़ पड़ते थे । धर्माभूत का पान कर लोग भावविभोर हो उठते थे । अनेक लोग संयम धारण कर रहे थे । नंगेपाव, कठोर धरती की चुभन तो जैसे उनका जीवन क्रम बन गई थीं रूखा सूखा एक बार भोजन ही उनका उद्देश्य रह गया था ।

महाराज वारिषेण विहार करते हुए पलाशकूट नगर में पधारे । लोग उनके प्रवचनों को सुनने उमड़ पड़े । आज महाराज श्रेणिक के मंत्री अग्निभूत के साथ उनका युवा पुत्र पुष्पडालभी आया । उसने मुनि श्री के प्रवचन सुने । उसका भक्ति भाव उमड़ आया । वह धर्मनिष्ठ तो था ही । वह वारिषेण कुमार का बालमित्र भी था । उसे अपने मित्र का यह मुनिवेश उसकी क्रिया ,साधना सभी प्रत्साहित करने लगी । उसने मुनि वारिषेण को नवधाभक्ति पूर्वक आहार कराया और उनके गमन करने के समय भक्ति और पूर्व मैत्री से प्रभावित

होकर वह भी उनके साथ वन की ओर चला । मुनि वारिषेण अपने बाल सखा की धर्मके प्रति रूचि जानकर उसे तत्त्व की बातें बताने लगे । उन्होंने संसार के वैभवों की क्षणभंगुरता ,विषयों की वेदना एवं चातुर्गति के कथों को समझाते हुए सप्ततत्त्व के श्रद्धान की चर्चा की ।

पुष्पडाल ने कुछ दूर तक महाराज की बातें ध्यान से सुनी । फिर उसका मन लौटने के लिए व्याकुल होने लगा । सोचने लगा —“अरे मैं तो शिष्टाचार वश इन्हें धर्म मैत्री एवं व्यवहार के नाते कुछ दूर तक विदा करने आया था । अपनी पत्नी से ‘अभी आता हूँ कहकर आया था । पर ये तो लौटने को कहते ही नहीं हैं । अब क्या करूँ ।”

उसने महाराज से परोक्ष रूप से लौटने की जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा —“महाराज हम लोग शहर से बहुत दूर आ गये हैं । देखिए यह वही सरोवर है । जहाँ हम लोग बचपन में तैरने आते थे । हम लोग इसी के किनारे इस वन में छायादार वृक्षों की छाया में खेलते थे । यह मैदान भी वही है । जहाँ सखाओं के साथ हम लोग धूममचाते थे । ” पुष्पडाल पुराने स्मृति चिन्हों को दिखा दिखा कर यह सूचित करना चाहता था कि वे कितने आगे आ चुके हैं ।

पर मुनि महाराज तो मौन होकर चले जा रहे थे । उन्होंने एक बार भी पुष्पडाल को लौटने को न कहा । शिष्टाचार वश पुष्पडाल भी स्पष्ट शब्दों में लौटने का आग्रह न कर सका ।

मुनि वारिषेण ने तो उसे वैराग्य का महत्व समझाते हुए अनुप्रेक्षा भावों पर गहन उपदेश दिया ।

महाराज के उपदेशों का पुष्पडाल पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसने उसी समय उनसे दीक्षा ले ली । वह भी वारिषेण के साथ मुनि हो गया । उसने गहन शास्त्राभ्यास किया ज्ञानकी उपलब्धि की । वह संयम का पालन तो करता पर चित्त न लगता । उसकी समाधि में स्थिरता न आती । उसे पत्नी की स्मृति सताती । बार बार उसकी छवि आँखों के सामने नाचने लगता । उसे निरन्तर पत्नी की स्मृति हो आती । वासनायें उस पर हावी हो जाती । पुष्पडाल को मुनिवेश धारण किए बारह वर्ष बीत गये । पर उसका मन अभी भी पत्नी की

स्मृति में अटका हुआ था ।

मुनि वारिषेण ने बारह वर्ष के पश्चात पुष्पडाल मुनि को तीर्थयात्रा पर चलने का आदेश दिया । दोनों गुरु शिष्य तीर्थाटन के लिए निकल पड़े । तीर्थदर्शन करते-करते वे राजगृही विपुलाचल पर भगवान वर्धमान के समवशरण में पहुँच गये ।

“संसार में वासनाओं में डूबे नर—नारी सदैव व्याकुल रह कर देह—सुख के लिए ऐसे कर्म कर बैठते हैं जो उन्हें नर्कों की वेदना ही देते हैं । पति—पत्नी के वियोग की स्थिति उन्हें धर्म से च्युत कर देती है । अरे पति के वियोग में स्त्री कामातुर होकर दुष्कृत्य का आचरण करने लगती है । संयम से च्युत व्यक्ति सदैव वासना की ज्वाला में दग्ध होता रहता है । ” प्रसंग वश गणधरदेव विषयातुर जीव की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाल रहे थे ।

मुनि पुष्पडाल पर इसका उलटा ही प्रभाव पड़ा । वे जीवन के बारह वर्ष पीछे अतीत में खो गये । उन्हें दिखाई देने लगा वह दिन जब वे मुनि वारिषेण को शिष्टाचार वश कुछ दूर तक विदा करने आये थे । पत्नी से तो उन्होंने तो यही कहा था कि ‘अभी आता हूँ’ । उनका मन सोचने लगा —“अरे मैंने पत्नी को विरह की अग्नि में झोंक दिया है । मैंने पत्नी को बताये बिना दीक्षा ले ली । वह विचारी मेरे विरह में कितनी दुखी हो रही होगी ? क्या उसकी स्थिति मेरे वियोग में विकसित होगी ? क्या वह जीवित होगी ? अरे मेरे कारण उसका जीवन ही बर्बाद हो गया । मैंने भावुकतावश वैराग्य ले लिया पर प्रियपत्नी का विचार ही नहीं किया । उसके दुख या निधन का कारण मैं ही हूँ । ” इस प्रकार सोचते सोचते उनका मन काम—पीड़ा से तपने लगा । समवशरण जैसे पवित्र स्थानपर भी उनका चेहरा उदास हो गया ।

वारिषेण महाराज ने क्षणभर में ही उनके चेहरे की उदासी पढ़ ली और अपने ज्ञान से उनके मन का कारण भी जान लिया । वारिषेण मुनि ने सोचा कि “मुनि पुष्पडाल इतने वर्षों के पश्चात भी काम—वासना से मुक्त नहीं हो सके । इन्हें पुनः सच्चे वैराग्य के पथ पर आरूढ़ करना होगा । ”



पूरे राजगृह में यह समाचार फैल गया कि मुनि वारिषेण एवं मुनि पुष्पडाल पधारें हैं । लोग दर्शनार्थ आने लगे । पर आश्चर्य यह था कि वे सीधे जिनमंदिर या उद्यान में न रहकर सीधे राजमहल में पहुँचे ।

“क्या बात है । ये मेरा पुत्र व उसका बाल सखा दोनों मुनि वेष में होते हुए भी राजमहल में क्यों आये ? मुनि को तो मंदिर में ठहरना चाहिए । कहीं इनके मन चलायमान तो नहीं हो गये ? ” मुनि महोदय को राजमहल में आया हुआ देखकर चेलनी के मन में अनेक शंकायें करवट लेने लगीं ।

“विराजिये महाराज ” कहकर चेलनाने एक काठ की एवं एक रत्नजड़ित चौकी रख दी । वे प्रथम परीक्षा करना चाहती थी कि देखे उनका बेटा कहाँ बैठता है ।

मुनि वारिषेण काठ की चौकी पर बैठे । पर पुष्पडाल मुनि विवेकचूक कर रत्नजड़ित चौकी पर बैठ गये । रानी चेलना को इस बात से शांति मिली कि उनका पुत्र मुनि धर्म में स्थित है । फिर भी राजमहल में आने के कारण उनका मन अभी भी शंका से घिरा था ।

राजभवन में मुनि वारिषेण एवं मुनि पुष्पडाल को आया हुआ देखकर पूरा निवास ,राजपरिवार दर्शनार्थ उमड़ पड़ा । पर सबके चेहरों पर यह प्रश्न तो उभरता ही कि महाराज राजभवन में क्यों आये हैं ?

“माता आप मेरी सभी पत्नियों को पूर्ण श्रृंगार करके मेरे समक्ष उपस्थित करें । ” वारिषेण मुनि ने माता से कहा ।

यह सुनते ही चेलना रानी को आश्चर्य हुआ । उन्हें लगा निश्चित रूप से इसका मन काल से पीड़ित है । उन्हें इस समय पुत्र मोह से अधिक धर्म के रक्षण की चिन्ता सताने लगी । कहीं पुत्र के व्यवहार से पवित्र जैनधर्म एवं महान चारित्र धारी साधु बदनाम न हो जायें यही चिन्ता उन्हें परेशान करने लगी । वे कुछ क्षण हिचकिचाई । पर फिर मन कठिन करके पुत्रवधुओं को श्रृंगार करके आने का आदेश देकर आश्चर्य से मुनिओं की ओर देखने लगीं ।

“बेटा तुम जिस संसार को त्याग चुके हो उसे क्यों स्मरण कर रहे हो ? क्यों अपनी पत्नियों को बुलवा रहे हो ? ” रानी चेलनी ने मुनि पुत्र वारिषेण से पूछा ।

“चिन्ता न करो माँ तुम्हें अभी सब पता चल जायेगा । ” मुनि वारिषेण ने रहस्यमयी वाणी में कहा ।

माँ मौन थी । सभी राजवधुएँ पूर्ण श्रृंगार कर आ गई थी । वे सभी अप्सराओं को लजा रही थीं । लगता था इन्द्रलोक की रंभा, मेनका, चित्रलेखा सभी यहाँ उतर आई हैं । वे सभी अपने सौन्दर्य से कामदेव को लजा रही थीं । उनके शरीर के कीमती वस्त्र और आभूषण जगमगा रहे थे । जैसे सितारे ही धरती पर उतर आये हों । सभी राजवधुएँ नतमस्तक खड़ी थी । उनकी हरिणी जैसी आँखें धरती पर जड़ी हुई थी । पति वारिषेण के वियोग में वे कुम्हला जरूर गई थी पर संयम का तेज उनके चेहरे को दैदीप्यमान कर रहा था ।

“माँ मैं चाँदी-सोने के बर्तनों में खाना खाऊँगा । ” मुनि वारिषेण जी ने नया आदेश दिया ।

“क्या ? ” आश्चर्य से चेलनी महारानी ने पूछा । उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि उनका मुनि पुत्र चाँदी-सोने के बर्तनों में खायेगा । अरे वह तो मुनि है । हाथ ही उसका पात्र है ।

“माँ तू घबड़ा मत सब समझ जायेगी । ” पुनः माँ को धैर्य बधाते हुए मुनिजीने समझाया ।

आदेशानुसार षड्रसव्यंजन सोने-चाँदी के बर्तनों में सजा कर लाया गया । जब सब कुछ सज गया । तब गंभीर स्वर में मुनि वारिषेण ने साथी मुनि पुष्पडाल को संबोधित करते हुए कहा-“देखो मुनि पुष्पडाल । ये मेरा राजमहल है । अक्षय संपत्ति का मैं युवराज था । ये इन्द्राणी सी मेरी पत्नियाँ हैं । मैंने इनके साथ पाणिग्रहण करने के पश्चात् संसार का सुख भोगा है । मैंने सदैव सोने-चाँदी के बर्तनों में भोजन किया है । मैं मखमल के गलीचों पर ही चला हूँ । यदि तुम्हें सम्पत्ति का ही मोह है तो तुम चाहो उतनी धनदौलत ले लो । अरे यदि धन दौलत या पत्नी-पुत्रादि ही सर्वस्व होते , अक्षय होते, साथ में जाने वाले होते , मुक्ति दिलाने वाले होते, तो हमारे पूर्वज राजा-महाराज , तीर्थकर इसका त्याग क्यों करते ? पुष्पडाल ये सब तो क्षणिक हैं । मृत्यु तक के ही साथी हैं । यह धन क्या मृत्यु के पश्चात् साथ आयेगा ? क्या कुटुम्ब परिवार साथ देंगे ? हम इस मरणधर्मा-रोग का घर-बूढ़े होने वाले शरीर के प्रति इतने आसक्त हैं जो

मलमूत्र से गंदा है । यह सम्पत्तिजो चंचल है । सोच लो तुम्हें क्या करना है । एक ओर मुक्ति है । एक ओर आसक्ति । एक ओर धन है दूसरी ओर धर्म । एक ओर त्याग है दूसरी ओर भोग । एक ओर भव भ्रमण है दूसरी ओर मुक्ति ।”

पुष्पडाल मुनि ने वारिषेण की संपदा देखी, इन्द्राणी को भी लजानेवाली सौन्दर्यवती पत्नियों को देखा । वारिषेण के शब्द उसके कानों के पथ से हृदय तक उतर गये । जो सत्य बारह वर्षों से मोह के कारण नहीं समझ पाये थे वे एक क्षण में समझ गये । मोह नष्ट हो गया । सच्चे वैराग्य का सूर्य उदित हो चुका था । उन्हें अपनी गलती का एहसास हो गया था । वे पश्चात के ताप में सिकने लगे । पश्चाताप की अग्नि में पिघला हुआ पाप नयनों के नीर से धुलने लगा । वे वारिषेण के चरणों में गिरकर कहने लगे —“ महाराज क्षमा करें । आज मेरा मोह व तत्जन्य अन्धकार नष्ट हो गया है । हे मुनि! मैं जन्मांध था सत्य को जान ही नहीं पाया । एक पत्नी का मोह मेरे तप को आबद्ध किए रहा । मैं सत्य को देख ही नहीं पाया । मेरे बारह वर्ष पानी में चले गये । प्रभु मुझे प्रायश्चित्त का आदेश दे ।”

“मुनि पुष्पडाल पश्चाताप मनुष्य को पवित्र बना देता है । तुममें सत्यकी दृष्टि उत्पन्न हो गई है । जागे तभी से सबंरा समझो यह तुम्हारा दोष नहीं । तुम्हारे पूर्व कर्मों का ही उदय था । जिसने तुम्हारी दृष्टि को जागृत नहीं होने दिया । पर अब तुम्हारा शुभोदय आया है । तुम पुनः आत्मचिंतन में लीन होकर आत्मकल्याण की ओर मुड़ जाओ । यही प्रायश्चित्त है ।” मुनि वारिषेणजी ने धैर्य बँधाते हुए उन्हें तपकी ओर उन्मुख किया ।

“माँ मैं समझता हूँ कि आप मेरा उद्देश्य समझ गई होगी ।”

अब समझने को रहा ही क्या था रानी चलना के चेहरे की प्रसन्नता ही व्यक्त कर रही थी । कि उनका मन पूर्ण रूप से पुत्र के प्रति श्रद्धावान हो चुका था ।

मुनिवारिषेण एवं मुनि पुष्पडाल राजभवन के संमस्त वैभव के प्रति उदास भाव से राजमार्ग से होकर वन की ओर गमन कर रहे थे । अनेक अश्रुपूर्णनयन उनके गमन को देखकर बरस रहे थे ।

जम्बूस्वामी

राजगृही नगरी की शोभा इन्द्रपुरी को भी लजा रहा थी । राजमहल के ऊँचे गुम्बद के कलश उषा की किरणों के सुनहरे प्रकाश में और भी सुनहरे होकर दमक उठे थे । नगरी में उच्च अट्टालिकायें उसकी समृद्धि की परिचायक थीं । मंदिर की ध्वजा एवं कलश निवासियों के धर्म प्रेम के प्रतीक की तरह फहरा रहे थे । चौड़े राजमार्ग , बाजार की समृद्धि पूरे शहर और राज्य की सुख एवं मंगल की गाथा गा रहे थे । गीत—नृत्य के स्वर गूंजते थे । विशाल वनराजि के बीच शोभित भवन ऐसे लगते थे मानों वनदेवी की हरियाली गोद में कोई शिशु सो रहा हो । द्वारों पर बँधे वंदनवार प्रसन्नता के परिचायक थे । पूरे नगर में आनंद उत्साह था । सामन्तों , श्रेष्ठियों के रथ राजमार्ग से किंकिणी ध्वनि करते हुए मन्थर गति से जा रहे थे । हवेलियों के द्वारपर वांजित्रों की मधुर ध्वनि गूंज रही थी । राज्य में कोई भूखादि के दुख से पीड़ित नहीं था । राजा और प्रजा के बीच पिता—पुत्र के मधुर संबंध थे ।

राजगृही के श्रेष्ठ अरहदास अपनी प्रिय सुधर्म चारिणी जिनमती के साथ जिनेन्द्रभगवान की पूजा—भक्ति के साथ जीवन यापन कर रहे थे । सेठजी धन—धान्य के पूर्ण थे । उनकी हवेली पर हाथी झूमते थे । देश—विदेश में उनका व्यापार फैला हुआ था । उनकी शाख सर्वत्र बरकरार थी । सेठ अरहदास इसे पुण्योदय मानकर निरभिमानता से धर्मका यथोचित पालन करते हुए व्यापार कार्य में लगे थे ।

अपने कक्ष में बैठे हुए अरहदास जब स्वाध्याय कर रहे थे । तभी जिनमती सेठानी ने कक्ष में प्रवेश किया एवं एक ओर बैठ गई ।

“कहिए प्रिये । प्रातःकाल क्यों कष्ट किया ? ” सेठजी ने शास्त्र बंद करते हुए स्नेह से पूछा ।

“नाथ आज मैंने रात्रि के पिछले प्रहर में कुछ विशेष स्वप्न देखे है ।”

“कैसे स्वप्न प्रिये ? ”

“नाथ मैंने पांच स्वप्न देखे हैं वे इस प्रकार हैं —

अत्यन्त सुगंधित जंबूफलों का समूह ,समस्त दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला निधूम अग्नि, पुष्पित—फलित सुगंधित शालिक्षेत्र ,चक्रवात—हंसादि पक्षियों के मधुर कलरव के युक्त सरोवर एवं नाना मगरमच्छ से भरा हुआ विशालसागर ।”

पांचो स्वप्नों का वर्णन कर सेठानी जिज्ञासावश सेठजी के चेहरे को निहारने लगी ।

“ प्रिये ये अति मंगल स्वप्न हैं । तुम्हारे गर्भ में जो जीव पल रहा है । वह अत्यन्त स्वरूपवान , भाग्यवान , कान्तिवान सर्व कलाओं में निपुण होगा । इस सौन्दर्य में शील होगा । वह बचपन से ही विकार रहित होगा । संसार के भोगों को त्याग कर आत्मकल्याण हेतु निग्रन्थ बनेगा । जिसकी विद्या—चारित्र्य से जन—जन का कल्याण होगा । ” स्वप्न—फल बताते हुए सेठने सेठानी को स्नेहवश अपने आलिंगन में बद्धकर लिया ।

गर्भ में प्रल रहे ऐसे महान शिशु के प्रति माता का प्यार और भी उमड़ने लगा । गर्भ की वृद्धि के साथ सेठानी के मनोभावों में वात्सल्य छलकने लगा । उनकी दानवृत्ति और भी बढ़ गई । जिनेन्द्रभक्ति और स्वाध्याय में उनका मन अधिक लगने लगा । यद्यपि गर्भ भार से उनके अंगों में कृशता, आलस्य बढ़ रहा था—पर चित्तकी प्रसन्नता वृद्धिगत हो रही थी ।

हवेली की दासियाँ—परिचारिकायें सेठानी की सेवामें अहर्निश लगी रहती थीं । हवेली में सदाव्रत ही खुल गया था । वहाँ से किसी याचक को खाली हाथ लौटने का अवकाश ही नहीं था ।

ठीक नौ माह के पश्चात एक दिव्यस्वरूपी शिशु ने सेठानी जिनमती के गर्भ से जन्म लिया । शिशु का सौन्दर्य अनुपम था ।

पुत्रजन्म के समाचार ने सेठजी एवं हवेली के सभी कर्मचारियों में आनंद भर दिया । सेठजीने हाथ खोलकर दान दिया । परिजन—पुरजन सभी इस समाचार से प्रसन्न हो उठा । हवेली में मानों दिवाली ही जगमगा उठी । चारों ओर बधाइयों के स्वर गूँजने लगे ।

सेठ अरहदास ने ज्योतिषी से पुत्र के ग्रहनक्षत्र पूछे । सेठानी जिनमती ने पांचों स्वप्नों में प्रथम स्वप्न सुगन्धित जंबूफलों को देखा था । अतः बालक का नाम जंबू कुमार रखा गया । शिशु जंबू कुमार द्वितीया के चाँद की तरह खिलने

लगे । उनके रूप का निखार कामदेव से भी अधिक निखरने लगा । एक बार जो भी उन्हें देख लेता, वह उन्हें अपनी आँखों में बसा लेता ।

एकबार नगर में अवधिज्ञानी मुनि महाराज का आगमन हुआ उनके दर्शन को लोग उमड़ पड़े और प्रवचन से आत्मोद्धार भावना से भर उठे । शिशु जंबू कुमार को लेकर सेठ अरहदास और सेठानी जिनमती उनके दर्शनार्थ गए । महाराज को वन्दन करके उन्होंने विनम्रता से पूछा—“महाराज मेरे इस पुत्र जंबू स्वामी के जीवनवृत्त को ,इसके अतीत और भविष्य के बारे में बताने का कष्ट करें ।”

“श्रेष्ठि अरहदास तुम्हारा यह पुत्र महान तपस्वी और इस युग का अन्तिम केवली होगा । यह प्रश्न कि “अन्तिम केवली कौन होगा ? श्रेणिक द्वारा भगवान महावीर के समवशरण में पूछने पर भगवान ने कहा था — “यह विद्युन्माली नाम का देव जो यहाँ देवताओं के कोठे में बैठा है वह सातवें दिन स्वर्ग से चलकर इसी राजगृही में सेठ अरहदास की पत्नी के गर्भ से जन्म लेगा और इस भव से मोक्षगामी होगा । ”

भगवान की इस भविष्यवाणी को सुनकर श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने इस महापुरुष जो तद्भव मोक्षगामी होने वाला है, उसके जीवन को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की । भगवान ने इस जंबू कुमार के पूर्वभवों का परिचय श्रेणिक महाराज को दिया था ,उसे ही मुनि महाराज ने सेठ अरहदास को अपने ज्ञान से जानकर संक्षेप में बताया ।

“यह जंबू कुमार का जीव स्वर्ग में विद्युन्माली नामक देव था । इससे पूर्व इसके तीन भव ,उत्तरोत्तर प्रगति के भव रहे हैं । तीन भव पहले यह सोमशर्मा ब्राह्मण का पुत्र ‘भवदेव’ था । इसने अपने भाई ‘भवदत्त’ के साथ मुनिधर्म को अंगीकार कर कठोर तप द्वारा स्वर्ग में देवत्व प्राप्त किया । पुनःश्च इस भवदेव का जीव वीताशोक नगरी में राजा महापद्म की पटरानी वनमाला के गर्भ से शिवकुमार के नाम से पुत्र के रूप में जन्मा ,और बड़े भाई भवदत्त ने भी पुण्य के उदय से राजा वज्रदन्त की पत्नी रानी यशोधना के गर्भ से सागरचन्द्र नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया । दोनों युवान हुए ,दोनों के विवाह हुए । एकबार सुवन्धुतिलक नामक मुनि महाराज के दर्शन करते समय सागरचन्द्र को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया । उसे भाई के प्रति अति स्नेह उमड़ आया । लेकिन

धर्म के पालन एवं कठोर तप से संसार के दुःखों से मुक्त हुआ जा सकता है उसी से स्वर्ग सुख और मनुष्य जीवन में संयम धारण का अवसर मिल सकता है – ऐसा विचार कर सागरचन्द्र ने वहीं दीक्षा ले ली । मुनि सागरचन्द्र के मन में भाव जागे कि वे विहार करते हुए वीताशोक नगरी जाएँ और अपने पूर्व जन्म के भाई युवराज शिवकुमार को सतपथ पर लगायें । इसी भावना से अपने गुरु के साथ विहार करते हुए मुनि सागर चन्द्र वीताशोक नगरी में पधारे । मुनि महाराजों के दर्शन करते ही शिवकुमार को भी वैराग्य हो गया । उसने दीक्षा लेने का संकल्प किया । लेकिन उसे मां-बाप की आज्ञा प्राप्त न हुई ,अतः उसका मन दुःखी हो गया । यद्यपि वह घर में तो रहा पर उसका मन फिर कभी घर में न लगा । उसे भोगों से घृणा हो गयी । अब वह अपने श्रृंगार ,आनन्द प्रमोद यहाँ तक कि अपने देह के प्रति उदास रहने लगा । उसका अधिकांश समय आत्मसाधना में व्यतीत होने लगा । उसने सिर्फ कांजी का शुद्ध आहार लेकर वर्षों तक कठोर तप किया और अन्त में सन्यास पूर्वक मरण किया । इस तप के प्रभाव से शिवकुमार का जीव विद्युन्माली ही ,यह तुम्हारे पुत्र जंबू कुमार के नाम से उत्पन्न हुआ । और यह यौवनावस्था में ही सन्यास धारण कर मुक्तिपथ का अधिकारी बनेगा । इसका विवाह ,इसके स्वर्ग की चार देवियां ,जिन्होंने इसी मगध देश में जन्म लिया है ,वे इसकी पत्नियां होगी । ” इस प्रकार मुनि महाराज ने अपने अवधिज्ञान से जंबू कुमार के पूर्वभव की जीवन यात्रा का वर्णन किया ।

सेठ-सेठानी पुत्र के भव्य अतीत को ज्ञात कर प्रसन्न हुए । उनका बेटा यौवन में ही गृहत्यागी हो जाएगा इससे वे दुःखी भी हुए । परन्तु उनका दुःख उनकी सद्भावना से स्वयं दूर हो गया । वे सोचने लगे कि “बेटे के गृहत्यागी होने से हम दो को ही दुःख होगा ,परन्तु इसके ज्ञान और तपस्या के प्रभाव से अनन्त जीवों का कल्याण होगा । लोगों को यह मोक्ष का पथ प्रशस्त करेगा । मेरा यह पुत्र संसार के जन्म मरण से मुक्त होकर मोक्षगामी होगा । वह तपस्या के प्रभाव से कर्मक्षय कर केवली होगा । ” इस प्रकार के भावों को भाते हुए अरहदास और जिनमती महाराज को वन्दन कर ,जंबूकुमार को लाड़करते हुए घर लौटे ।

“ मन्त्री मैं उस युवक जंबूकुमार को देखना चाहता हूँ जिसने मेरे विषमसंग्राम-शूर होथी को वश में कर लिया । वह हाथी जो ऐरावत सा विशाल भ्रमर सा काला ,जिसके गंड स्थल से मद झर रहा था ,जो शेर से भी टक्कर ले सकता है ,जिसने लोहशृखलाओं को तृण की भांति तोड़ दिया है और जिसके दौड़ने से नगर के कई मकान धाराशाही हो गए हैं , जिसके कारण मृत्यु के भय से सर्वत्र हा-हाकार मच गया था, जिसने बाग-बगीचों की सुन्दरता को रौंध डाला है ,ऐसे मदोन्मत्त हाथी पर सरलता से विजय पाने वाले उस युवक श्रेष्ठी पुत्र को मैं सम्मानित करना चाहता हूँ । ” राजा ने मंत्री को जंबूकुमार को सम्मान सहित लाने का आदेश दिया ।

मन्त्री स्वयं रथ लेकर अरहदास सेठ की हवेली पर पहुँचे और सन्मानसह उसे राजभवन में ले आए । इस कामदेव से सुन्दर युवक को देखकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने जंबूकुमार को स्नेह से गले लगाया । और उच्चआसन दिया । जंबूकुमार का उचित सम्मान किया गया ।



“ महाराज मैं शहस्त्रशृंग पर्वत पर रहने वाला गगनपति नामक विद्याधर हूँ । केरल नाम की नगरी के राजा मृगांग मेरे बहनोई हैं ,मेरी भान्जी विलासवती जो अनुपम सुन्दरी है,उसका विवाह आपके साथ मेरे बहनोई साहब करना चाहते हैं । मेरी भान्जी की सुन्दरता को देखकर रत्नशेखर नामक विद्याधर ने उस कन्या को बलपूर्वक प्राप्त करने के लिए केरल पर आक्रमण कर दिया है । नगरी को चारों ओर से घेर लिया गया है । मेरे बहनोई मृगांग के पास सीमित सैन्यदल है । वे संकट में हैं । वे कल अपने क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करते हुए , रत्नशेखर से युद्ध करने के लिए किले से बाहर निकलकर केसरिया करेंगे । मुझे जब समाचार मिला तो मैं उनकी मदद के लिए जा रहा हूँ । रास्ते में आपके नगर एवं आपको देखकर यह समाचार देने के लिए मैं रूका हूँ । ” गगनपति नामक विद्याधर ने महाराज को प्रणाम कर ,अपने आगमन का हेतु एवं सम्पूर्ण परिस्थिति से अवगत कराया ।

महाराज ने यह सब सुनकर गगनपति विद्याधर को आश्वासन दिया और

स्वयं केरल जाकर महाराज मृगांग की सहायता करने का वचन दिया । उन्होंने मन्त्री को सैन्य को तैयार करने का आदेश दिया ।

“महाराज यदि आदेश दें तो मैं इन विद्याधर के साथ केरल जाकर महाराज मृगांग की मदद करूँ । ” पास में बैठे जंबूकुमार ने अतिविनय से आज्ञा चाही ।

महाराज की आज्ञा मिलने पर वे गगनपति के साथ उसके विमान में बैठकर केरल की ओर रवाना हुए । इसके पश्चात महाराज भी अपने सैन्य के साथ रवाना हुए ।

केरल पहुँच कर जंबूकुमार ने सर्वप्रथम एक कुशल कूट नीतिज्ञ की भांति स्वयं दूत बनकर रत्नशेखर के शिविर में पहुँचे । उसे समझाते हुए कहा—“विद्याधर रत्नशेखर यह तुम्हें शोभा नहीं देता कि तुम किसी की कन्या को बलपूर्वक अपनी पत्नी बनाओ । तुम्हें एक विद्याधर राजा होने के नाते ऐसे पापकर्म के लिए युद्ध नहीं करना चाहिए । तुम हिंसा और कुशील जैसे पापों का बन्ध कर रहे हो , और यह पाप नरक गति में ले जानेवाले हैं । जब तक कोई स्त्री तुम्हारा वरण न करें या कोई पिता अपनी कन्या का प्रस्ताव न लाए तब तक उसके विषय में कुविचार करना भी पाप है । वास्तव में ऐसी कन्या बहन-बेटी की तरह होती है । मैं तुम से अनुरोध करता हूँ और सलाह देता हूँ कि तुम इस युद्ध के घेरे को हटा लो । ”जंबूकुमार ने विद्याधर को हर तरह से समझाने की कोशिश की ।

“बाँध लो इस दुष्ट को । ” क्रोध से बौखलाकर रत्नशेखर विद्याधर ने जंबूकुमार को पकड़कर मार डालने का आदेश अपने सैनिकों को दिया । वह यह भी भूल गया कि दूत अवध्य होता है ।

रत्नशेखर के इस व्यवहार से जंबूकुमार को भी क्रोध आ गया , और वे सभास्थल में ही उन सैनिकों से युद्ध करने लगे जो उन पर आक्रमण के लिए उद्यत थे । जंबूकुमार ने अपने युद्ध कौशल से शत्रुओं को तितर-बितर कर दिया । उधर महाराज मृगांग भी अपनी सेना को लेकर दुर्ग से बाहर आए और रत्नशेखर पर आक्रमण किया । भीषण युद्ध हुआ । दोनों सेनाओं के योद्धा अपने-अपने दैवी शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे । हाथी चिघ्वाड़ रहे थे । घोड़े उत्तेजित थे । धरती मानव और पशु रक्त से लाल हो रही थी । कटे हुए रूड—

मुंड रूधिर के प्रवाह में तैर रहे थे । पूरी भूमि लाशों से पट गई थी । इस युद्ध में गगनपति घायल हो गया और राजा मृगांग युद्ध में परास्त हुए । रत्नशेखर ने उन्हें बन्दी बना लिया । इस समाचार से केरल के राजघराने और राज्य में शोक की लहर दौड़ गई । जंबूकुमार ने जब इस पराजय का समाचार सुना तो वे पुनः सेना सहित केरल की ओर रवाना हुए ।

“रत्नशेखर मैं चाहता हूँ कि हम लोग द्रुह्य युद्ध करके हार-जीत का निर्णय कर लें । नाहक में नरसंहार क्यों हो ? ” जंबूकुमार ने रक्तपात बचाने हेतु रत्नशेखर को ललकारते हुए द्रुह्य युद्ध के लिए आह्वान किया ।

रत्नशेखर ने जंबूकुमार के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । दोनों के बीच भयंकर मलयुद्ध हुआ । इस मलयुद्ध में जंबूकुमार ने रत्नशेखर को परास्त कर बन्दी बनाया । महाराज मृगांग को बन्धन से मुक्त कराया । महाराज मृगांग की आँखों में आँसू छलक उठे । उन्होंने जंबूकुमार के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की । उन्हें अपने साथ केरल के राजभवन में पधारने की विनती की । महाराज ने विनय को आज्ञा मानकर जंबूकुमार के साथ राजभवन की ओर प्रयाण किया । साथ में बन्दी रत्नशेखर को भी ले गए । राजभवन पहुँच कर जंबूकुमार के कहने पर रत्न शेखर को स्वतन्त्र कर दिया गया । जंबूकुमार ने उसे पुनः समझाया कि वह कुशील हेतु इस प्रकार के संहारक युद्ध न करें । जंबूकुमार ने मृगांग और रत्नशेखर के बीच मैत्री भी करा दी ।

रत्नशेखर जंबूकुमार की इस भावना , प्रेम और वीरता को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसे अपने कृत्य पर ग्लानि भी हुई और उसने महाराज मृगांग और जंबूकुमार से क्षमा याचना भी की । सब लोग परस्पर गले मिले । उपस्थित समाजनों एवं नगरजनों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए जयघोष किया । सबलोग जंबूकुमार की बहादुरी और उनकी सहृदयता की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे ।

कुछ दिनों केरल रहने के पश्चात महाराज मृगांग ने अपनी पुत्री का पाणिगृहण राजगृही के महाराज से धूमधाम से किया । कुछ समय पश्चात महाराज मृगांग अपने परिवार , विद्याधर गगनपति , रत्नशेखर एवं जंबूकुमार सहित विमान में बैठकर मगध की ओर रवाना हुए । मार्ग में उनकी भेंट महाराज श्रेणिक से हुई । महाराज श्रेणिक से सबका परिचय कराया गया ।

महाराज श्रेणिक ने सबका उचित स्वागत किया । जंबूकुमार का सिर चूमकर उन्हें गले से लगाया । कुछ समय वहाँ रहकर सबलोग अपने स्थानों को विदा हो गए । जंबूकुमार ने वहीं से महाराज श्रेणिक के साथ अपने नगर राजगृही की ओर प्रयाण किया । राजगृह नगर में प्रवेश करने से पूर्व उन्हें ज्ञात हुआ कि उद्यान में सुधर्म स्वामी अपने पांच सौ मुनि शिष्यों के साथ विराजमान हैं । महाराज श्रेणिक और जंबूकुमार के रथ उपवन की ओर मोड़ दिये गये । सबने मुनि महाराज के दर्शन किए, वन्दना और अर्चना की । महाराज ने सब को धर्मलाभ कहते हुए आशीर्वाद दिया ।

“महाराज आपके दर्शन करते ही मेरे हृदय में आपके प्रति अनायास स्नेह उमड़ पड़ा है । इसका क्या कारण है ? भक्ति के साथ मेरे हृदय में यह प्रेम भाव क्यों छलक रहा है । ” जंबूकुमार ने महाराज के समक्ष अपनी अन्तर की भावना को व्यक्त किया ।

“जंबूकुमार यह स्वाभाविक है । मेरा और तुम्हारा पिछले पांच भवों से भाईयों का सम्बन्ध रहा है । ” महाराज ने भवदत्त और भवदेव से लेकर पिछले जन्म तक की कहानी सुनाते हुए कहा— “तुम विद्युन्माली देव के अवतार जंबूस्वामी हुए और मैं स्वर्ग ये चयकर संवाहन नगर के राजा के यहाँ सुधर्म नामक पुत्र के रूप में जन्मा । मेरे पिताजी भगवान महावीर के समवशरण में उनके उपदेश से प्रभावित होकर दीक्षित हो गए और वे भगवान महावीर के चतुर्थ गणधर हुए । मैंने भी संसार को असार जान कर , यौवन को तप का श्रेष्ठ समय मानकर दीक्षा ग्रहण की । और मुझे भगवान महावीर के पांचवें गणधर बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वहीं समवशरण से मैं विहार करते हुए यहाँ आया हूँ । अतः स्वाभाविक है कि मुझे देखकर तुम्हारे हृदय में यह प्रेम उमड़ आया है । ”

महाराज सुधर्म के द्वारा अपने जीवनवृत्त को जानकर एवं धर्मश्रवण कर जंबूकुमार अपने महल में लौट आए ।



“जंबूकुमार हम चाहते हैं कि अब तुम्हारा विवाह हो जाना चाहिए। हम लोग तुम्हें नगर सेठ के पद पर विभूषित कर आत्मकल्याण के पथ पर जाना चाहते हैं।” अरहदास सेठ ने जंबूकुमार से अपने हृदय की भावना व्यक्त की।

“हाँ बेटा मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा विवाह हो, और मैं भी बहू के हाथ में घर सौंप कर जिनेन्द्र भक्ति में अपने समय को बिताऊँ।” जिनमती ने भी पुत्र से आग्रह किया।

जंबूकुमार को मौन देखकर अरहदास ने पुनः स्मरण करते हुए कहा – “बेटा जंबूकुमार तुम्हारे जन्म के पश्चात् मेरे चार मित्रों ने जिनके घर कन्याओं ने जन्म लिया था। उन्होंने उन चारों का विवाह यौवन सम्पन्न होने पर तुम्हारे साथ करने का प्रस्ताव किया था। जिसका मैंने स्वीकार भी किया था। मेरे मित्र समुद्रदत्त की कन्या पद्मश्री, दूसरे कुबेरदत्त की कन्या कनकश्री, तीसरे वैश्रवण की कन्या विनयश्री और चौथे धनदत्त की पुत्री रूपश्री है। ये कन्याएँ सुन्दर हैं। रूप में वे इन्द्राणी को भी लज्जित करनेवाली हैं। चन्द्रमुखी, मृगनयनी ये कन्याएँ विद्या और बुद्धि में वृहस्पति के समान हैं। चित्र नृत्य, कला में निपुण हैं। इन चारों कन्याओं के साथ हम अपने वचनों के अनुसार तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं।”

“पिताजी मैं इस विवाह के बन्धनों में नहीं बँध सकता।” नम्रता से जंबूकुमार ने अपने हृदय की बात व्यक्त की।

“क्यों?” अरहदास और जिनमती के मुँह से एकाएक ये उदगार फूट पड़े। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। पुत्र विवाह की सुखद कल्पनाओं का महल उन्हें ढहता हुआ नजर आया।

“पिताजी मैं भगवान महावीर स्वामी के पंचम गणधर मुनि सुधर्म सागर से अपने पूर्व जीवन के बारे में सबकुछ जान चुका हूँ। और अब मैं संसार में रह कर जीवन को बरबाद नहीं करना चाहता। मैं जिनदीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहता हूँ।” जंबूकुमार ने अपने निश्चय को व्यक्त किया।

“जंबूकुमार के इस निश्चय को सुनकर सेठ अरहदास को दुःख हुआ। वे और सेठानी जिनमती दिगमूढ़ रह गए। उन्हें लगा कि वे अपने उन चार मित्रों से यह वृत्तान्त कैसे कहेंगे?”

सेठ अरहदास ने देखा कि जंबूकुमार अपने दृढ़ निर्धार से नहीं हटेंगे तो

निराश होकर दुःखी मन से उन्होंने अपने चारों मित्रों के पास यह संदेश भिजवा दिया और क्षमा याचना भी की ।

सेठ अरहदास के इस संदेश को सुनकर चारों श्रेष्ठियों को बड़ा आघात लगा । उनके उत्साह रूपी चन्द्र पर यह समाचार ग्रहण सा बन गया । चारों कन्याओं ने जब यह समाचार सुना तो वे स्तब्ध रह गईं । उन्होंने अपने मन में विचार किया —“हमने बचपन से जिन्हें अपना पति स्वीकार किया है ,उन जंबूकुमार के अलावा अन्य कोई हमारा पति नहीं हो सकता । भारतीय नारी एक बार मन से जिसे अपना पति स्वीकार कर लेती है ,फिर अन्य किसी को पति के रूप में स्वीकार करने की कल्पना भी नहीं कर सकती ।”

वे चारों सोच रही थीं कि—“ ये सब जंबूकुमार की भावुकता है , अभी उन्होंने रूप औप यौवन का आस्वाद ही कहाँ लिया है ? रूप की मदिरा का पान कर नशा ही कब किया है ? उन्हें विश्वास था कि उन्हें अपने हाव-भाव , रूप,यौवन कला एवं स्त्रीयोचित भावों द्वारा जंबूकुमार को रिझाने में सफलता मिलेगी । उन्हें विश्वास था कि वे अपने सौन्दर्य के प्रति जंबूकुमार को अकर्षित ही नहीं बाँध भी लेंगी ।

अपने पिता और माता को चिन्ता युक्त देखकर कन्याओं ने कहा -

“ पिताजी आप चिन्ता न करें । हम लोग जंबूकुमार के अलावा अन्य किसी पुरुष से विवाह नहीं करेंगे । हमें विश्वास है कि हम विवाह के पश्चात अपने पति को वैरागी होने से बचा लेंगे ।”

“यह कैसे सम्भव होगा ? ” जिज्ञासा से पुत्री के पिता और माता ने पूछा ।

“यह आप हम पर छोड़ दें । आप सेठ अरहदास के यहाँ यह संदेश पहुँचा दें कि उनके पुत्र मात्र एक दिन के लिए पाणिग्रहण करें । फिर चाहे तो दीक्षित हो जाएँ । ”पुत्रियों ने आग्रह किया ।

“बेटी यह विचित्र लगता है कि तुम जो करने जा रही हो वह एक साहस ही है । यदि विवाहोपरान्त जंबूकुमार दीक्षित हो गए तो तुम चारों का जीवन बरबाद हो जाएगा । बेटी यौवन का सौन्दर्य विरह का नाग बनकर तुम्हें डँसेगा । तुम तन और मन दोनों से बिखर जाओगी । अभी कुछ नहीं बिगड़ा है । तुम अपने विचार को त्यागो । हम भारत वर्ष के उत्तम कुलजन्मा श्रेष्ठ निपुण

युवकों से तुम्हारा विवाह करा दोगे।” पुत्रियों का समझाने का श्रेष्ठियों ने पूरा प्रयत्न किया। “नहीं पिताजी अब यह संभव नहीं है। हमने सच्चे मन से जंबूकुमार को अपना स्वामी माना है। यदि हम अपने प्रयत्न में सफल न हो सके तो हम भी जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण के पथ पर उनकी सहयात्रिणी बनेंगे। लेकिन अन्य किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह संभव नहीं।” चारों कन्याओं ने दृढ़ता से कहा।

चारों पुत्रियों के पिता बड़े दुखी थे। पर पुत्रियों के दृढ़निश्चय के सामने उन्हें झुकना पड़ा। अन्ततोगत्वा चारों कन्याओं की ओर से एक दूत श्रेष्ठि अरहदास के यहाँ पहुँचा।

“श्रेष्ठिवर मैं आपके चारों मित्रों की ओर से उनकी पुत्रियों का संदेश लेकर आया हूँ।” आगतदूत ने अपना परिचय देते हुए अपने उद्देश्य को विनयपूर्वक प्रस्तुत किया।

“कहो दूत क्या संदेश है ?” सेठजीने अति उदास स्वर में पूछा।

“सेठजी आपकी होनेवाली पुत्रवधुओं का यह दृढ़ निश्चय है कि वे विवाह करेंगी तो जंबूकुमार से अन्यथा क्वारी रहेंगी।”

“लेकिन मेरा पुत्र तो विवाह न करने का निश्चय कर चुका है।”

“श्रेष्ठिवर उन कन्याओं ने पूर्ण विश्वास से यह संदेश भेजा है कि जंबूकुमार विवाह करके चाहे तो एक दिन ही घर में रहे। यदि इस एक दिन के पश्चात् भी उन्हें दीक्षा लेना ही रुचे तो अवश्य ले लें।”

“मैं इस बात को समझा नहीं दूतवर।” अरहदास ने जिज्ञासा से पूछा

“इसका रहस्य तो मैं भी निश्चित रूप से नहीं जानता। पर मेरा अनुमान है कि उन चारों रूप और गुण में श्रेष्ठ कन्याओं को यह विश्वास है कि वे अपने सौन्दर्य और गुणों से अवश्य जंबूकुमार को रिझाकर, उनके मन को परिवर्तित कर सकेंगी।”

“ठीक है मैं पुत्र को समझाकर तुम्हें सूचना देता हूँ।”

दूत की योग्य व्यवस्था कर सेठ अरहदास अन्तःपुर में गये। पत्नी जिनमती को बुलाया। दोनों जंबूकुमार के कक्ष में आये। माता-पिता को कक्ष में आया जान जाम्बूकुमार पलंग से खड़े हो गये। उनके चरण स्पर्श किए एवं विवेकपूर्वक करबद्ध खड़े होकर बोले—“हे पिताजी! हे माताजी! आपने आने

का कष्ट क्यों किया ? मुझे बुला लेते । ”

“बेटा हम तुमसे कुछ याचना करने आये हैं ।” पिताने भरिये गले से कहा । और माँ के तो आंसू ही बहने लगे ।

“पिताजी ऐसा न कहें । मैं आपका पुत्र हूँ । मुझे आदेश दें । ”

“बेटा मेरी इज्जत का प्रश्न है । तुम्ही मेरी इज्जत बचा सकते हो । ”

“आखिर क्या बात है । पिताजी । आप आदेश दें । मैं अवश्य पालन करूँगा । ”

“बेटा मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूँ । पुनः कह रहा हूँ कि मैंने बचपन में अपने मित्रों को वचन दिया था कि उनकी चारों पुत्रियों के साथ तुम्हारा विवाह रचाऊँगा । तुमने विवाहका इन्कार कर मुझे बड़े धर्म संकट में डाल दिया है । मेरी जवान कंट रही है । मैं मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा । ” सेठ और सेठानी ने अति दयनीय स्वर में अपना हृदय खोल दिया ।

“पिताजी आपको ज्ञात है कि मैं संसार के बंधन में बँधना नहीं चाहता । सांसारिक भोगों से मैं विरक्त हो गया हूँ । मैं तो आपकी आज्ञा चाहकर दीक्षाग्रहण करना चाहता हूँ । आपही बतायें यदि मैं आपकी बात रखने के लिए विवाह कर भी लूँ तो भी मैं गृहत्याग करूँगा । उस समय उन चार कन्याओं के जीवन का क्या होगा ? अभी वे क्वारी हैं । उनके विवाह कहीं भी हो सकते हैं । बाद में उन्हें जीवन भर वियोग का दुख सहन करना पड़ेगा । ” जंबूकुमार ने परिस्थिति का पृथक्करण करते हुए कहा ।

“बेटा यह सब तुम्हारे युवा मन की भावुकता है । जब तुम विवाह करके भोगोपभोग के सुख भोगोगे तो यह सब भावुकता स्वयं बदल जायेगी । ”

“पिताजी यह असंभव है । मैंने यह निश्चय भावुकता नें नहीं अपितु दृढ़ चिन्तन के बाद लिया है ।

“ बेटा उन चारों पुत्रियों ने संदेश भेजा है । ”

“क्या पिताजी ? ”

“ बेटा उन कन्याओं ने मन से तुम्हें अपना पति मान लिया है । तुम्हारे अलावा संसार का हर पुरुष उनके लिए पिता और भाई है । उनका यह संदेश है कि तुम विवाह करके मात्र एक दिन ही उनके साथ रहो । उनका यह विश्वास है कि तुम उनके रूप-गुण की पूजा करने लगोगे । ” सेठजीने दूतद्वारा लाये गये

संदेश को कहकर समझाने का प्रयत्न किया ।

“ पिताजी यदि ऐसा न हुआ तो ? ”

“तो उन कन्याओं ने यह भी कहलवाया है कि यदि वे तुम्हें अपना न बना सकी तो वे भी तुम्हारे साथ दीक्षित हो जायेगी । ”

इस वाक्य ने जंबूकुमार के हृदय में हल-चल मचादी । कुछ क्षण सोचकर गंभीर स्वर में कहा —

“ठीक है पिताजी मैं विवाह के लिए प्रस्तुत हूँ । इससे आपकी बात भी रह जायेगी ऐर मेरी परीक्षा भी हो जायेगी । हो सकता है कि मुझे अकेले की जगह हम पांच का आत्मोद्धार हो । ”

जम्बूकुमार के इस निर्णय से सेठ-सेठानी के मन वैसे ही खिल उठे जैसे प्रातः कालीन किरणों से रात्रि के कुम्हलाये कमल खिल जाते हैं । उन्होंने प्रसन्नता के गद्गद् होकर पुत्र को छाती से लगा लिया । वे दौड़कर बाहर आये एवं अपना कीमती रत्नजड़ित हार दूत को देकर प्रसन्नता से कहा —“दूत तुम जाओ सभी मित्रों से कहो कि वे विवाह की तैयारी करें । ”



सारे नगर में यह चर्चा हर होठ पर गूँज रही थी कि यह एक विशेष विवाह हो रहा है । शर्त और स्वीकृति भी विशेष है । यदि विवाह के पश्चात ये नववधुएँ अपने पति को अपने रूप जाल में आबद्ध न कर सकीं तो वे दीक्षित हो जायेगी । यदि जंबूकुमार रूप की धूप से पिघल गये तो दीक्षा लेने का विचार छोड़ देंगे । यह तो योग और भोग का संघर्ष था ।

चारों श्रेष्ठि समुद्रदत्त, कुबेरदत्त, वैश्रवण एवं धनदत्त ने अपनी कन्याओं का विवाह एक ही मंडप में करने का निश्चय किया । विवाह मंडप की शोभा देखते ही बनती थी । लगता था कि स्वर्गपुरी धरती पर उतर आई है । विवाह मंडप ही नहीं पूरा नगर दुल्हन की तरह सजाया गया । विविध कमानों से सजे द्वार, उन पर बधे बन्धन बार, ध्वजा पताकायें, और रंग-विरंगी रोशनी से पूरा नगर जगमगा उठा । शहनाइयों के स्वर गूँज उठे । विवाह के गीतों से वातावरण मुखरित हो उठा ।

गोधूलि की बेला में जंबूकुमार की बारात विवाह मंडप पर पहुँची । दूल्हे की पोशाक और सजधज में वे कामदेव को भी लजा रहे थे । लोग उनके रूप को देखकर चकित थे । चारों कन्यायें जो रूप में इन्द्राणी सी लग रही थीं । वस्त्राभूषण में सजी-धजी विवाह मंडप में आईं तो लगा कि जैसे सौन्दर्य ही धरती पर मूर्तरूप धारण करके अवतरित हुआ है । जब उन कन्याओं ने जंबूकुमार के गले में वरमाला डाली तो वातावरण शहनाइयों के स्वर से गूँज उठा । आशीर्वाद के स्वर सुनाई देने लगे । चारों नववधुओं के साथ जंबूकुमार ऐसे शोभा दे रहे थे, जैसे चाँदनी के बीच चन्द्र शोभा देता है ।

चारों श्रेष्ठियों ने बारातियों का बहुमूल्य भेंट देकर स्वागत किया । उन्होंने अपनी पुत्रियों को धन-धान्य देकर विदा किया । अपनी पुत्रियों को विदा करते समय उन सबके हृदय भर आये । उनके मन आने वाले कल की चिन्ता में भीगे हुए थे । उनका मन मानों उन्हीं से प्रश्न कर रहा था कि—“ कल क्या उनकी पुत्रियाँ जंबूकुमार को अपने रूप और प्रेम के वंशीभूत कर सकेंगी ? या वे जंबूकुमार के वैराग्य भाव से प्रभावित होकर दीक्षित हो जायेंगी ? ”

चारों नववधुओं के साथ जंबूकुमार और पूरी बारात लौट आई । माँ जिनमती ने प्रसन्नता से नव वधुओं की आरती उतारी । उन्हें रत्नजड़ित आभूषण उपहार में दिये । उनका मस्तक चूमा और उन्हें गृह प्रवेश कराया । इन नव वधुओं की रूप छटा देखकर उन्हें विश्वास होने लगा कि निश्चित रूप से कन्याएँ जंबूकुमार का भाव परिवर्तन कर सकेंगी ।

संध्या का समय हो गया । अपने प्रियतम दिनकर को घर लौटा जानकर संध्या शरमा गई और शर्म से उसके मुख पर लज्जा की लाली छा गई । पूर्व दिशा में बादलों की ओट से चन्द्रमा झाकने लगा । वासन्ती, समीर की मन्द-मन्द सुगन्ध फैलने लगी । दीप मालिकाओं से महल जगमगा उठा । फूलों से सजे शयन कक्ष को ही उद्यान समझकर भौरै णँडराने लगे । पूरा वातावरण ही मादक और कामोत्तेजक बन गया था । विशेष रूप से सजाये गये शयनकक्ष में दूतियों द्वारा नववधुओं को कक्ष में प्रवेश कराया गया । जंबूकुमार को उनके मित्र शयनकक्ष में प्रवेश कराके अपने-अपने घर चले गए । कक्ष के प्रदीपों की ज्योति मंद कर दी गई । सुगन्धित कर्पूर और अगर जलाये गए । चारों नववधुएँ जंबूकुमार को हावभाव और अंग प्रदर्शन से रिझाने का प्रयत्न करने लगी । एक

ने उन्हें ताम्बूल देकर कर स्पर्श करने का आनन्द प्राप्त किया । कोई अपने कण्ठाभरण बताने के बहाने वक्षस्थल को प्रकट करने लगी । कोई विवाह की वस्त्र सजावट को हटाकर नाभि दर्शन कराने लगी तो कोई अपने उरु युगल को दर्शाने लगी । किसी ने तिरक्षे नयनों से ,मुस्कराते ओंठो से लुभाने का प्रयास किया । कोई कामसूत्र के भावों को पढ़ने लगी और कोई वीणा वादन ,काव्यपठन द्वारा जंबूकुमार को रिझाने की चेष्टा करने लगी । नववधुओं ने अपने सौन्दर्य कला ,विद्या और संगीत सभी प्रकार के हाव-भाव जताकर जंबूकुमार को रिझाने का पूरी रात प्रयत्न किया । लेकिन सुमेरू से दृढ़ जंबूकुमार पर इन वासना जन्य बातों का कोई प्रभाव न पड़ा । उनके चेहरे पर काम-भाव का रंचमात्र भी उदय नहीं हुआ । वे इस वासना के पंक में भी पंकज की भांति अल्पित रहे । उनकी इस अड़िगता को देखकर वे चारों मन में झुँझला उठीं । उन्होंने जंबूकुमार पर अनेक व्यंग किये । उन्हें काम के प्रति आकर्षित करनेके लिए अनेक उदाहरण देते हुए ,उन्हें उकसाने की कोशिश की । प्रत्येक पत्नी ने एक-एक ऐसी कथा प्रस्तुत की जिसमें व्यंग भी था और काम की ओर आकर्षित करने के भाव भी थे । लेकिन जंबूकुमार ने प्रत्येक कथा का उत्तर बड़े ही सटीक ढंग से कथाओं के माध्यम से दिया और हर कथा के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि त्याग ही जीवन की श्रेष्ठता है और सच्चे सुख का मार्ग है । इस प्रकार परस्पर के वार्तालाप में रात्रि का अन्तिम प्रहर भी बीतने हो हुआ । मुर्गे की बाँग भी प्रातःकाल की सूचना देने लगी ।



“कौन हो तुम जो मेरे इस महल में चोर की तरह प्रवेश करके मेरे पुत्र के शयनकक्ष के बाहर खड़े होकर, पति-पत्नी के संवाद को सुन रहे हो ? ” जिनमती सेठानी ने इस अजनबी को देखकर जिज्ञासा से प्रश्न किया ।

“माँ मैं विद्युतच्चर चोर हूँ । जो अपनी प्रियतमा वेश्या के लिए धन चुराकर भाग रहा था ,और मेरे पीछे सुरक्षा कर्मचारी पड़े हुए थे । उनसे बचने के लिए जब अन्य कोई उपाय न सूझा तो इस हवेली के खुले द्वार देखकर इसमें छिपने के लिए आया था । ” विद्युतच्चर ने अपना परिचय देते हुए सब कुछ बता

दिया । और पूछा —“माँ मैं तुझसे जानना चाहता हूँ कि तू इस अर्धरात्रि के समय क्यों बारंबार कभी कक्ष में ,कभी आंगन में ,उग्न सी होकर दौड़ रही है ,कभी तू दरवाजे के छिद्रों में आँख लगाती है और कभी आँखों को पोछती है । ”

जिनमती ने विद्युतघ्नर की सत्ययता और आत्मीयता देखकर पूरी बातें बताते हुए कहा —“कि मैं यह देख रही थी ,और सुनने का प्रयत्न कर रही थी कि निश्चय के अनुसार ये वधुएँ मेरे पुत्र का मन बदल पाई है या नहीं। लेकिन मैं देख रही हूँ कि मेरा पुत्र ही विजयी रहा है । मैं रो इसलिए रही हूँ कि प्रातःकाल मेरा बेटा और चारों बहुएँ दीक्षा लेकर घर संसार का त्याग कर देंगे।”

“माँ मेरा भी यही विश्वास है । मैं भी पिछले दो घण्टों से इनका वार्तालाप सुनकर यही स्तम्भित हो गया हूँ । मैं तुम्हारे घर चोरी करने आया था ,लेकिन इन के वार्तालाप ने मेरे पाँव ही जकड़ दिए । मेरा मन ही बदल गया । ”

“मतलब । ”जिनमती ने जिज्ञासा से पूछा ।

“मतलब कि मेरा मन भी इस चौरकर्म और संसार की धूर्तता ,वासना को त्यागकर तुम्हारे पुत्र के साथ दीक्षित होने का हो गया है । ” विद्युतघ्नर ने अपनी मनोभावना व्यक्त की ।

“बेटा तू चाहे उतना धन ले ले । तू कुछ क्षण के लिए मेरा भाई बनकर मेरे बेटे को समझा कि इन कुल वधुओं को स्वीकार कर गृहस्थ जीवन का पालन करें । ”

“माँ यह असंभव सा लगता है । लेकिन जब तू कहती है तो मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा । ”

शयनकक्ष के दरवाजे पर टकोरों की आवाज सुनकर दरवाजा खोलते हुए द्वार पर सभी ने खड़ी हुई माँ को देखा और साथ में एक अपरिचित को भी । जंबूकुमार के चेहरे पर जिज्ञासा देखकर माँ ने कहा —“बेटा इस समय रात्रि में मुझे आया देखकर तुझे आश्चर्य हुआ होगा । लेकिन आना अनिवार्य था । ये जो मेरे पास खड़े है ,तेरे छोटे मामा हैं । जब तू गर्भ में था तभी से ये व्यापार हेतु परदेश गया हुआ था । आज कुछ क्षण के लिए यहाँ तुम्हारे दर्शनों के लिए तुम्हें आशीर्वाद देने हेतु आया है । इसे प्रातःकाल से पूर्व लौटना था अतः इस असमय बेला में तुमसे मिलाने ले आयी हूँ ।” कहते कहते जिनमती ने विद्युतघ्नर का

परिचय दिया ।

जंबूकुमार ने नम्रता से उन्हें प्रणाम किया ,स्नेहवश आलिंगन किया और कुशल क्षेम पूछकर उचित आसन पर बैठाया । चर्चा के दौरान उसने और जिनमती ने पुनः जंबूकुमार को समझाने का प्रयत्न किया । विद्युतच्चर ने जंबूकुमार को भौतिक सुखों की ओर प्रेरित करने के लिए अनेक उदाहरण देकर तर्क प्रस्तुत किए। लेकिन जंबूकुमार ने उनके प्रत्येक तर्क और कामदर्शन को अपने तर्कों से निरूत्तर कर दिया । और, यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य संसार के भोग-विलासों में फँसकर कर्म के बन्धनों को बाँधता है । जब इन कर्मों की तप द्वारा निर्जरा करता है तभी अपने शुद्ध स्वरूप को पाकर मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त कर पाता है ।

इस के उपरान्त जंबूकुमार ने अपने पूर्वभव के वृत्तान्तों को सुनाकर अपने दृढ़ निश्चय को व्यक्त किया ।

“जंबूकुमार यह सत्य है कि तुम्हें धर्म की श्रद्धा और तप के प्रभाव से पूर्व जन्मों में सुख प्राप्त हुए । लेकिन बार-बार ऐसा सुख मिल ही जायेगा ,ऐसा क्यों मानते हो ? ” पुनः कुछ कथानकों के माध्यम से उदाहरण देकर अपनी बात को पुष्ट करने का प्रयत्न किया ।

जंबूकुमार ने अपने मामा के कथानक में दिए भोगों के उदाहरणों को कथानकों के उदाहरण द्वारा ही परास्त करते हुए वैराग्य की महत्ता को स्थापित किया ।

जंबूकुमार के अकाट्य तर्कों को सुनकर विद्युतच्चर उनके प्रति इतना प्रभावित हुआ कि उसने भक्ति पूर्वक जंबूकुमार की स्तुति की और उनके ही साथ-दीक्षा लेने का संकल्प व्यक्त किया ।



प्रातःकाल की किरण जग को आलोकित कर रही थी । सुनहरा थाल लिए उषा प्राची में सूर्य को तिलक लगा रही थी । पक्षियों के गान मानों सब को जगा रहा था । विहग -राग के मन्द स्वर गूँज उठे थे । मलयानिल कलियों से अठखेलियां कर रहा था । पुष्पों की सुगन्ध वातावरण को सुगन्धित कर रही थी ।

मंदिरों की घण्टियाँ भक्ति भाव भर रही थीं । वन की ओर जाते पशुओं के गले की घण्टियाँ संगीत का नाद गूँजित कर रही थीं । प्रातःकाल की इस मधुर बेला में मानो जंबूकुमार का ही नहीं उनकी चार पत्नियाँ, मामा विद्युतद्वार सभी के कल्याण के द्वार खोल रही थी । माता-पिता भी अपने अन्तर में ज्ञान के नय आलोक का अनुभव कर रहे थे । उनके मन भी वैराग्य भाव से छलक उठे । वे भी संसार को त्यागने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे ।

उद्यान में विराजमान अवधिज्ञानी गणधर मुनि श्री सुधर्म सागरजी के दर्शनों को आज पूरी नगरी ही उमड़ पड़ी थी । लगता था सारे रास्ते ही उद्यान की ओर मुड़ गये हैं । आज स्वयं महाराज, महारानी, मंत्रीगण, गण्यमान्य सामंत, श्रेष्ठिवर्ग सभी विशाल संख्या में उपस्थित थे । धर्मसभा समवशरण की भांति सुशोभित हो रही थी । महाराज की गंभीरवाणी के स्वर सभी के हृदय में शांति प्रदान कर रहे थे । पूरी सभा में पूर्ण शांति थी । लोगों के चित्त और कान प्रवचनों में ही तल्लीन थे ।

“धर्मप्रेमी बन्धुओ आत्मा का परमात्मा से मिलन ही सच्चा सुख है । भव भवान्तरों से हम भौतिक सुखों की मृगमरीचिका के पीछे भटक रहे हैं । अपने जीवन के अमूल्य क्षण उस सुख के पीछे नष्ट कर रहे हैं जो जीवन को स्वयं नष्ट करनेवाले हैं । शरीर के सुख को ही सुख मानकर हम चतुर्गति में भ्रमण करते रहे । हमें अब यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि आत्मा का सुख वैभव में नहीं-पर त्याग में, तपमें है । जब तक हम बहिर्मात्मा से अन्तरात्मा में नहीं उतरेंगे । तब तक हम परमात्मा के साथ नैकट्य प्राप्त नहीं कर सकते । इस नैकट्यता के लिए हमें सर्व प्रथम मोह से मुक्ति पानी होगी । सबसे अधिक मोह हमने इस पंचभूत में विलीन होने वाले पुद्गल से निर्मित शरीर से किया है, उससे मोह छोड़ना होगा । शरीर का मोह ही संबंधों के मोह का जनक है । यह संबंधो का मोह परिवार समाज आदि के मोह में बाँधता है । यही मोह धन, संपत्ति ऐशोआराम की ओर आकृष्ट करता है । 'मेरा-तेरा' का भाव इसी से पनपते हैं । एक बार मोह में फँसा व्यक्ति उसमें वैसे ही लिपटता जाता है जैसे गीले गुड़ पर बैठी मक्खी अधिकाधिक उसी से लिपटती जाती है । संसार के संबंध अनित्य हैं, मोह के कारणभूत हैं । जो इस चक्रव्यूह में से निकल जाता है वही आत्मा को परख कर उसकी परिशुद्धि, विकास एवं ऊर्ध्वागमन के लिए गृहत्यागी बनकर

तप-ध्यान द्वारा कर्मों की निर्जरा करके मोक्षसुख का अधिकारी बनता है । यही अनंत सुख आत्मा से परमात्मा बनने की यात्रा है ।” गणधरस्वामी ने अपना लाक्षणिक शैली में मुक्ति का पथ निर्देशित करते हुए कहा ।

लोग मंत्रमुग्ध होकर अमृतवाणी का पान कर रहे थे । आज की इस भीड़ का कारण और भी था । आज गणधरस्वामी से जम्बूकुमार , उनके माता-पिता एवं नवविवाहिता चारों पत्नियों प्रव्रज्या ग्रहण करने वाले थे ।

प्रवचन के पश्चात महाराज श्रेणिक ने अपूर्व उत्साह के साथ जंबूकुमार का महाभिनिष्क्रमण का उत्सव मनाया । सभी दीक्षार्थियों की अपूर्व नगर यात्रा निकाली गई । पूरा शहर ध्वजा-पताका , बंधनवारों से सजाया गया । पूरे शहर में जैनधर्म की जयघोष के नाद गूंज उठे । सजे-धजे हाथियों पर पूर्ण श्रृंगार से सुशोभित जंबूकुमार एवं सभी दीक्षार्थी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो स्वयं इन्द्र धरती पर अवतरित हुआ है । उनकी शोभा कामदेव को भी लजा रही थी । वधुओं का रूप एवं श्रृंगार इन्द्राणी के सौन्दर्य को भी फीका कर रहा था । लगता था , कामदेव एवं रति का यह जोड़ा नगर विहार को उतरा है । स्वर्ग के देवता भी पुष्पवृष्टि कर रहे थे । जयघोष का नाद गूंज रहा था । पर इस शोभायात्रा का प्रभाव यही था कि इस अपूर्व श्रृंगार के बीच भी वैराग्य का भाव उमड़ रहा था । श्रृंगार जैसे स्वयं वैराग्य के समक्ष लजा रहा था ।

“ देखो कितने सुन्दर लग रहे हैं हमारे जंबूकुमार ” एक नागरिक दूसरे से कह रहा था ।

“हाँ-हाँ कामदेव को लजा रहे हैं । ” दूसरे ने उत्तर दिया ।

“देखो इन नववधुओं को अरे अभी तो हाथ के कंगन व मेंहदी भी नहीं छूटी । इनका रूप तो देखो ” स्त्रियाँ परस्पर में नववधुओं के रूप-सौन्दर्य का वखान कर रही थीं ।

“बिचारी इन्होंने देखा ही क्या है ? संसार का सुख ही कहाँ जाना है । कितनी कोमल है । क्या ये साध्वी जीवन का परिषद सहन कर पायेंगी । ” अनेक तर्क-वितर्क नर-नारी अपने विचार भाव व्यक्त करते हुए कर रहे थे ।

“देखो हमारे सेठ-सेठानी भी तो इस अतुल सम्पत्ति को तृणवत त्याग कर उसी पथ पर जा रहे हैं । ” एक नागरिक बोला

“हाँ भाई सच है । धन से अधिक महत्वपूर्ण धर्म है । पर हम तो उसी

निन्यानवे के चक्कर में फँसे हैं । ”दूसरेने कहा ।

पूरा वातावरण इन्हीं दीक्षार्थीओं के गुणगान कर रहा था । पूरे वातावरण में वैराग्य की लहर ही दौड़ रही थी ।

“क्यों भाइयों ? जब इनको वैरागी बनना है तो सजाया क्यों गया है ? ” एक व्यक्ति ने जिज्ञासा से पूछा ।

“भईया इन्हें पूरे वैभव से सजाया गया है । यह इनकी एक प्रकार से परीक्षा है कि कहीं इनका मन इस वैभव में अभी भी लगा तो नहीं है । भाई अभी कुछ समय पश्चात ये मुनिश्री के समक्ष इस वैभव को तृणवत त्याग देंगे । ”दूसरे ने समझाते हुए कहा ।

शोभायात्रा पुनः उद्यान में लौट आई । महाराज श्रेणिक ने स्वयं अपने हाथों हाथी पर से जंबूकुमार को उतारा ।

गणधरस्वामी सुधर्मा ने दीक्षाविधि का प्रारम्भ किया । देखते ही देखते सभी के शरीर से वस्त्राभूषण उतरते गये । इस अपूर्व निर्माह को देखकर अनेकों की आँखें भीग गई । राजकी वस्त्रों के स्थान पर अब जंबूकुमार एवं उनके पिताजी के पास था एक मात्र कमण्डल और पीछी । वे दिग्म्बर अवस्था को प्राप्त कर सर्वस्व भौतिक उपकरण त्याग चुके थे । जंबूकुमार की माता और पत्नियों के शरीर पर थी एकमात्र सफेद साड़ी । लक्ष्मी अब सरस्वती बन गई थी । उनके इस त्याग एवं निस्पृह्यता को देख नारी समुदाय की आँखें अश्रुका अर्घ्य चढ़ा रही थी । कई नारियों की सिसकियाँ ही बंध गई । वातावरण जैनधर्म की जयजयकार के साथ मुनि जंबूकुमार की जय के साथ गूँज उठा । लोगों के मस्तक श्रद्धा से झुक गये । वे भावविभोर हो गये, जब इन सभी ने अपना केशलुंचन किया । इस परिषद को प्रसन्नता से सहन करते देख लोगों का मन भावुक हो गया । अनेकों के मन वैराग्य से भर गये । अनेकों श्रावकों ने व्रतधारण किए ।

अब उनके सामने थे मुनि जंबूस्वामी ,मुनि अरहदास आर्थिका जिनमती एवं चार आर्थिकायें । सभी आत्मचिंतन में लीन वातावरण में भी अपूर्व शांति ।

लोग उनके दर्शन कर धन्य—धन्य होकर नगर में लौट आये ।

मुनि अरहदास—आर्थिका जिनमती ,आर्थिका पद्मश्री ,आ. कनकश्री आ. विनयश्री एवं आर्थिका रूपश्री ने घोर तप द्वारा कर्मों की निर्जरा करते हुए

सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण प्राप्त कर विभिन्न स्वर्गों में देव हुए ।

मुनि जंबूस्वामी ने साधु के महाव्रतों का पालन करते हुए बारहव्रतों का पूर्ण रूपेण पालन किया । द्वादश अनुप्रेक्षा भावों को भाते हुए ,परिषहों को प्रसन्नचित्त सहन करते हुए कठिन तपाराधना की । यह घोर तपस्या बराबर अठारह वर्षों तक चलती रही । देह तो सूख गई पर चेहरे की कांति और आत्माकी शक्ति अनेक सुनी वृद्धिगत हुई ।

अठारह वर्ष के पश्चात गणधर सुधर्मास्वामी निर्वाणको प्राप्त हुए । उसी दिन दुर्धरतप धारी जंबूस्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई ।

इस काल की यह अनुपम व अंतिम घटना थी । जंबूस्वामी को केवलज्ञान होते ही स्वर्ग के देवता प्रसन्नता से नाच उठे । उन्होंने विविध प्रकार से अपनी प्रसन्नता व्यक्त की । लोगों को इन केवलज्ञानी जंबूस्वामी का धर्मलाभ मिले अतः धर्मसभा का पूरे आर्यखण्ड में आयोजन किया ।

अठारहवर्षों तक केवली जंबूस्वामी ने इन धर्मसभाओं में अपने उपदेश से लाखों—करोड़ों लोगों को धर्मोपदेश देकर आत्मकल्याण के मार्ग पर प्रशस्त किया ।

जंबूस्वामी अपने देहत्याग का काल निकट जान कर सल्लेखना धारण कर बारह प्रकार के महातप में लीन हो गये । एवं विपुलगिरि से अपने कर्मों का क्षय कर मोक्षगामी बने ।

जंबूस्वामी के मोक्षगमन के पश्चात यतिवर विद्युच्चर ससंघ ताप्रलित्त पधारे । नगर केबाहर उद्यान में ठहरे । अशुभ कर्म के उदय से उनपर लगातार पांचदिन तक भूत—पिशाच भयंकर उपसर्ग करते रहे । संघ के अन्य साधु तो भयभीत होकर भाग गये । पर देह से पूर्ण निर्मोही यतिवर विद्युच्चर सुमेरू से अडिग रहे । ज्यों ज्यों उपसर्ग बढ़ता गया त्यों—त्यों वे आत्मचिंतन में डूबते गए । द्वादश अनुप्रेक्षाओं में लीन होते गये । आखिर भूत—पिशाच भी थक गये । परिषह जयी यतिवर ने समाधिपूर्वक मरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि का सुख प्राप्त किया ।

हमारे अंतिम केवली जंबूस्वामी के प्रभाव से प्रभावित विद्युच्चर भी मुक्ति का अधिकारी बना ।

सुदर्शन सागर

“ हे नाथ आज रात्रि के अन्तिम पहर में मैंने कुछ विशेष स्वप्न देखे हैं। जिनमें मैंने सुदर्शन मेरू, कल्पवृक्ष, देव भवन, समुद्र एवं अग्नि को देखा है। इन स्वप्नों को देखने के पश्चात मुझे अनायास अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। ”सेठानी जिनमती ने दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर वृषभदास के कक्ष में प्रवेश कर उनके निकट बैठते हुए स्वप्न चर्चा की।

“प्रिये ये तो बहुत ही उत्तम स्वप्न हैं। निश्चित ही हमें किसी महान उपलब्धि की प्राप्ति होगी। चलो हम अभी उद्यान में स्थित जिनमंदिर चलें। और वहाँ विराजमान अवधिज्ञानी मुनिश्री सुगुप्त जी से इन स्वप्नों का फल ज्ञात करें।” सेठ वृषभदास ने प्रसन्नता से जिनमती सेठानी को मुनि महाराज के दर्शनार्थ चलने को प्रोत्साहित किया।

सेठ वृषभदास, जिनमती सेठानी के साथ चम्पापुरनगरी के उद्यान में विराजित सुगुप्त महाराज के दर्शन के लिए अपने रथ में निकल पड़े। उन्होंने भगवान् जिनन्द्र की अष्ट द्रव्य से पूजा की, एवं मुनि महाराज की श्रद्धासहित वन्दना की। महाराज ने धर्मलाभ कहते हुए आशीर्वाद दिया। महाराज ने वहाँ बैठे हुए श्रावकों को उद्बोधन करते हुए पुण्य के फल की चर्चा की, और उत्तरोत्तर धर्म कार्य की प्रेरणा दी। जीवन का अन्तिम सुख, पूर्ण त्याग द्वारा कर्मक्षय कर मुक्ति प्राप्त करना है।

प्रवचन के पश्चात सेठ वृषभदास ने जिनमती सेठानी द्वारा देखे गए स्वप्नों का महाराज के समक्ष वर्णन किया। महाराज ने कुछ क्षण मौन रहकर अपने ज्ञान से विचार कर स्वप्न के फल को बताते हुए कहा—“हे श्रेष्ठीवर्य तुम्हारी पत्नी ने जो स्वप्न देखे हैं। वे अति उत्तम स्वप्न हैं। सेठानी के गर्भ में ऐसा पुण्यशाली महान जीव अवतरित हुआ है। जो महान पुण्यात्मा है। सुमेरू दर्शन उसकी धीरता का प्रतीक है। कल्पवृक्ष इस तथ्य का द्योतक है कि वह सम्पत्तिवान् और दानी होगा। देवभवन के दर्शन यह सूचित करते हैं कि वह देवों द्वारा भी वन्दनीय होगा। समुद्र दर्शन इस तथ्य का प्रतीक है कि तुम्हारा

पुत्र गुण और रूप के रत्नों का भण्डार होगा । अग्नि यह सूचित करती है कि तुम्हारा पुत्र तप से कर्मरूपी विकारों को नष्ट कर मुक्ति प्राप्त करेगा । तुम्हारे पुत्र की कीर्ति तीनों लोको नें व्याप्त होगी । ”

महाराजश्री के मुख से जन्म लेने वाले पुत्र के लक्षणों को जानकर पति-पत्नी अति प्रसन्न होते हुए , मुनि श्री को वन्दन करने लगे ।

“महाराज क्या हम जान सकते है कि यह भव्य जीव कौन है ? और इसका पूर्वभव क्या है ? कृपया बताने का कष्ट करें ।”सेठ वृषभदास ने महाराज से पुनः प्रार्थना की ।

“श्रेष्ठी वृषभदास यह तुम्हारा ही सुभगनाम का ग्वाला है जो तुम्हारी सेवा करता था । एक दिन संध्या के समय जब यह ग्वाला जंगल से घर लौट रहा था रात्रि हो चुकी थी, माघ की ठण्डी अपना प्रकोप बढ़ा रही थी । मार्ग सुनसान थे। लोग अपने घरों में दुबके पड़े थे । ग्वाला भी शीघ्र अपने घर पहुँचना चाहता था। लेकिन उसके पांव एकाएक थक गए ,उसने देखा कि इस दौत किट-किटा देनेवाली ,शरीर को बर्फ बना देने वाली ठण्डी में एक दिगम्बरावस्था में मुनि महाराज खुले आकाश के नीचे सामयिक में लीन हैं । उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और मन में यह विचार भी आया कि ये विचारे कैसे जीवित रहेंगे ? महाराज के प्रति उसके मन में दया का शुभ भाव जन्मा । वह जल्दी-जल्दी लगभग दौड़ता हुआ अपने घर गया । वहाँ से कुछ सूखी लकड़ियाँ लेकर वापिस आया । उसने महाराज के पास लकड़ियाँ जलाई । रात भर मुनि महाराज को अग्नि से तपाता रहा और स्वयं ताप कर रात्रि व्यतीत करता रहा । आत्मध्यान में लीन मुनि महाराज तो जैसे शीत और उष्ण दोनों से दूर थे । वे तो देह से ऊपर आत्मा में स्थिर हो चुके थे । प्रातः काल सूर्य की किरणों ने जब महाराज के चरणों में वन्दना की तो वे पुनः देह में लौटे । करुणामय नेत्र खोले और अपने सामने बैठे हुए ग्वाले तथा जलती हुई अग्नि को देखकर सबकुछ समझ गए । उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि की किरणों से ग्वाले का रोम-रोम पुलकित हो उठा । उसने दोनों हाथ जोड़कर विनय से अपना मस्तक झुका दिया । महाराज का आशीर्वाद के लिए सिर पर रखा हाथ मानों उसमें नये कंपन उत्पन्न करने लगा । उसकी चित्तवृत्तियों में निर्मलता आई ।

“उठो भव्य आत्मन ! मैं तुम्हें यही शिक्षा देता हूँ कि तुम जब भी किसी

कार्य का प्रारम्भ करो तो प्रारम्भ में ही 'णमो अरिहन्ताणम्' मन्त्र का स्मरण किया करो ।' कहते हुए आकाशमार्ग से विहार कर गए । सुभग ग्वाला मुनि महाराज के निर्देशित मंत्र को महान उपलब्धि मानकर दृढ़ श्रद्धा के साथ प्रत्येककार्य के प्रारम्भ में उसका जाप करने लगा । वह उठते-बैठते, गाय चराते, भोजन करते सभी कार्यों का प्रारम्भ इस महामन्त्र से करता । सेठ वृषभदास ! तुम भी उसकी 'णमोकार' मंत्र पर दृढ़ आस्था देखकर उससे अनुराग करने लगे और उसे उत्तम भोजन, वस्त्र आदि की सुविधाएँ देकर वात्सल्य भाव से रखने लगे ।

एक बार जब उसे पता चला कि उसकी भैंसे गंगा के पार चली गई हैं तो वह उन्हें वापिस लाने के लिए गंगा में कूद पड़ा । तैरते समय एक पैनी लकड़ी का भाग उसके पेट में धँस गया, खून के फब्बारे फूटने लगे । जब ग्वाले को लगा कि उसका अन्त निकट है तो 'णमो अरिहन्ताणम्' का उच्चारण करते हुए उसने यह भावना धारण की कि मैं अपने अगले भव में भी आपने मालिक सेठ वृषभदास के यहाँ जन्म लूँ -उनका पुत्र बनूँ और उनकी सेवा करता रहूँ । अन्तिम समय के इस शुद्ध परिणाम और शुभ भाव के कारण सुभग ग्वाला का जीव पुण्यकर्म के उदय से तुम्हारी पत्नी के गर्भ में अवतरित हुआ है और वही जन्म लेकर यशकीर्ति को प्राप्त करेगा, परन्तु आत्मोद्धारक भी बनेगा । महाराज ने सेठानी के गर्भ में अवतरित जीव का पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया ।

सेठ-सेठानी दोनों सन्तुष्ट होकर घर आये । ज्यों ज्यों गर्भ स्थित बालक वृद्धिगत होता गया, त्यों-त्यों सेठ के यश और कीर्ति में वृद्धि होने लगी । गर्भ की वृद्धि के साथ सेठानी जिनमती का शरीर कुछ कृश अवश्य हुआ परन्तु चित्त की प्रसन्नता अनेक गुनी बढ़ गई । उनका मन निरन्तर पूजा, स्वाध्याय, जप, दान पुण्य के लिए अधिक सक्रिय होता गया ।

चम्पापुर नगर में सेठ वृषभदास के द्वारे आज उत्सव का आनन्द छाया हुआ है । हवेली को विशेष रूप से सजाया गया है, द्वार पर मंगलवाद्य की ध्वनि गूँज रही है । सभी कर्मचरियों के मन उत्साह से भरे हैं । दास-दासियाँ मुहँ मागा इनाम पाकर प्रसन्न हैं । सेठ वृषभदास ने गरीबों के लिए अपना भण्डार ही खोल दिया है । सभी उन्हें हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं । बधाई देने वालों का ताँता लगा हुआ है । सभीका स्वागत उत्तम भोजनोत्सवों के किया जा रहा है । गण्यमान

महिलायें जिनमती सेठानी के सौरकक्ष में उनका अभिनन्दन कर रही हैं । सौहर के गीत गाए जा रहे हैं । सेठ जी की ओर से सभी मंदिरों में पूजा विधान कराये जा रहे हैं । चम्पापुर के महाराज और महारानी स्वयं नगर सेठ वृषभदास की हवेली पर अभिनन्दन देने पधारे हैं । महारानी ने तो नवजात शिशु के गले में रत्नों का हार ही पहना दिया । आज सेठ वृषभ दास के घर सेठानी जिनमती की कुक्षि से पुत्र ने जन्म जो लिया था । इसी शिशु के जन्म के उत्सव में सर्वत्र आनन्द छाया हुआ है ।

बालक इतना दर्शनीय और रूपवान था कि उसका नाम ही 'सुदर्शन' रख दिया । उसी दिन राज पुरोहित की पत्नी ने भी पुत्र को जन्म दिया था , जिसका नाम कपिल रखा गया था । पुरोहित पुत्र और श्रेष्ठ पुत्र दोनों साथ-साथ सुख सुविधाओं में पलकर बड़े हो रहे थे ।

बालक सुदर्शन दूज के चाँद की तरह वृद्धिगत हो रहा था । उसकी छोटी सी हँसी और मुकराहट पर सेठ-सेठानी ही नहीं अपितु सभी लोग मुग्ध थे । उसकी किलकारियाँ माता जिनमती और पिता वृषभदास के हृदय सागर में हिलोरें बनकर लहराती । योग्य समय पर शिशु सुदर्शन को विद्या अभ्यास कराया गया । प्रखर बुद्धि के कारण बालक ने बहुत ही शीघ्र विद्या ग्रहण की । किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते सुदर्शन ने लौकिक और धार्मिक शिक्षा पूर्ण की । वह व्यापार आदि गुणों को सीख गया । साथ ही कला और संस्कृति के प्रति भी ज्ञानवान बना । इन सब के साथ उसने जैनधर्म के महान सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया । युवक सुदर्शन सचमुच ज्ञानका भण्डार तो बना ही , उसका रूप और सौन्दर्य भी निखर उठा । कामदेव को लजाने वाला उसका रूप सभी के लिए आकर्षण और आह्लाद का कारण बना । लेकिन , इस रूप में— यौवन में कही वासना नहीं थी । उच्छृंखलता नहीं थी , सौन्दर्य और शील का संगम था सुदर्शन । वाणी की मधुरता और विवेक से उसने सब के मन मोह लिए थे । उसे यौवन सम्पन्न जानकर अनेक श्रेष्ठी अपनी कन्याओं के विवाह के लिए लालायित हे उठे थे ।



“ मित्र सुदर्शन आज तुम उदास क्यों हो ? तुम चेहरे पर व्याग्रता क्यों है ? ” सुदर्शन को उदास देखकर उनके सखा ,पुरोहित पुत्र कपिल भट्ट ने पूछा ।

“मित्र क्या बताऊँ । मेरे मन में ना जाने कैसी मीठी—पीड़ा हो रही है । तुम्हें पता है कि जब हम लोग कल राजमार्ग से घर लौट रहे थे, तब एक सुकन्या जो वस्त्राभूषणों से अलंकरित थी, जो अपनी सखियों के साथ मंदिर से पूजा अर्चना करके लौट रही थी ,उसके सौन्दर्य ने मुझे उसकी ओर आकर्षित कर लिया । मेरा मन अनायास उसकी ओर खिंच गया । मुझे अनुभव हो रहा है कि हमारा जन्म—जन्मान्तर का रिस्ता है । उसे पाने की तीव्र भावना के कारण मेरा चित्त उदास है । ” सुदर्शन ने अपने अंतरंग मित्र को अपने मन की भावना का बयान किया ।

कपिल ,सुदर्शन जैसे चरित्र निष्ठ ,सरल,हँसमुख मित्र के मुख से यह सुनकर चकित तो हुआ ,परन्तु इसे यौवन की आवश्यकता मानकर एवं पूर्वजन्म के संस्कारों को मानकर उसने अपने मित्र को आश्वासन दिया कि वह पूरा पता लगाकर उसे बतायेगा कि वह कन्या कौन थी ,और क्या उनका विवाह संभव है ?”

सुदर्शन को बेचैन देखकर सेठ वृषभदास भी बेचैन हो उठे । वे सोचते बटे को ऐसा कौनसा दर्द है ? क्या किसीने कुछ कहा ? क्या कोई शारीरिक व्याधि है ? ऐसे अनेक प्रश्न उन्हें सताने लगे । उन्होंने पत्नी से भी चर्चा की । पुत्रकी उदासी से सेठानी का तो मन ही उचट गया । वे दोनों रातभर इसी पर अनेक तर्क—वितर्क करते रहे ।

“क्यों न उसके मित्र कपिल से ज्ञातकरें ? ” सेठानी ने सुझाया ।

“यही ठीक रहेगा । ” सेठ ने भी समर्थन किया ।

प्रातः सेठ वृषभदास राजपुरोहित के घर पहुँचे और कपिल से पुत्र सुदर्शन की उदासी का कारण पूछा ।

“पूज्य काकाजी मेरा प्रिय मित्र सुदर्शन अब युवा हो गया है । उसे अब विवाह के बंधन में बाँधना चाहिए । चाचाजी कल ही मैंने प्रिय मित्र से उसकी उदासी का कारण पूछा था । बड़े संकोच के साथ उसने किसी लड़की के प्रति अपने आकर्षण की चर्चा की थी ।”

“कौन है वह लड़की ? ” जिज्ञासा से सेठजी ने पूछा ।

“काकाजी मैंने कल पूरी जाँच पड़ताल की । तो पता चला कि वह श्रेष्ठीवर्ग सागरदत्त की कन्या मनोरमा है । जो रूप—गुण का भंडार है । वही हमारे मित्र का दिल चुरा कर ले गई है।” कपिल ने रहस्योद्घाटन करते हुए सबकुछ कह दिया जो उसने पता चलाया था ।

सत्य को ज्ञातकर सेठ जी का मन प्रसन्नता से भर गया । उनका मन बल्लियों उछलने लगा । वे जैसे दौड़ते हुए घर पहुँचे । सारा विवरण पत्नी को सुनाया । सेठानी भी इस रहस्य को जानकर विह्वल हो उठी । बहू की ललक उनके मन में सुगबुगा उठी ।

सेठ वृषभदास को याद हो आया वह भूतकाल जब उनके मित्र श्रेष्ठी सागरदत्त ने स्वयं ही तो उनके शिशु सुदर्शन को देखकर कहा था —“सेठ वृषभदास यदि मेरी पत्नीने पुत्री को जन्म दिया तो मैं तुम्हारे ही इस सुदर्शन से उसका विवाह करूँगा । इसे ही अपना जमाता बनाऊँगा । ” वर्षों पूर्व की बातें विस्मृति के गर्त में धूमिल पड़ गई थीं । पर , आज सुदर्शन की उदासी के कारण ने सत्य की धूल झाड़ दी थी ।

उधर मनोरमा भी सुदर्शन को देखकर उसे नयनों के द्वार से हृदय—मंदिर में प्रतिष्ठित कर चुकी थी । यौवन की उर्मियों में बस सुदर्शन ही झूल रहा था । दिल—दिमाग पर वही छा गया था । मनोरमा की बेचैनी उसकी सखियों से छिपी न रही । वे लोग भी सखी के मनोभावों को जानकर आँखों की आँखों में इशारों से सब कुछ जानकर प्रसन्न हुईं । रति पर काम के बाण चल चुके थे । वे सब सुदर्शन के रूप—गुण का बढ़ा—चढ़ा कर वर्णन कर उसे और भी काम—पीड़ित कर रही थी । आँखों से दूर होने पर भी सुदर्शन मनोरमा की आँखों में ही बस चुका था ।

सखियों के माध्यम से मनोरमा की माता एवं माता के माध्यम से सेठ सागरदत्त भी पूरी बात ज्ञात कर प्रसन्नता से भर गये । उन्हें वर्षों पूर्व का अपना ही कथन याद हो आया । उन्हें लगा कि उनकी वर्षों की साधनापूर्ण होने को है ।

“आइए सेठ सागरदत्त जी ” द्वार पर सेठ सागरदत्त के रथको आया देखकर सेठ वृषभदास ने स्वागत के स्वरमें कहा । सेठ सागरदत्त को ससम्मान हवेली के दीवानखण्ड में सेठ वृषभदास ले गये । कुशल क्षेम के पश्चात उनके आने का कारण जानने की जिज्ञासा व्यक्त की ।

“प्रिय मित्र सेठ वृषभदास तुम्हें याद है लगभग बीस वर्ष पूर्व जब तुम्हारा पुत्र दो वर्ष का था । तब मैंने तुमसे कहा था कि यदि मेरे घर पुत्री का जन्म होगा तो मैं तुम्हारे पुत्र को अपना दामाद बनाऊँगा, आज वह शुभ वेला आ गई है । मैं अपनी पुत्री का रिश्ता लेकर तुम्हारे द्वार पर आया हूँ ।”

“बंधु सागरदत्त तुमने तो मेरे मुँह की बात ही छीन ली । मुझे सब कुछ याद है । मित्र प्यार के ऐसे रिश्तो को कौन भूल सकता है । मैं तो स्वयं तुम्हारे घर यही तय करने आने वाला था ।” कहकर वृषभदास सागरदत्त के गले ही लग गये ।

दोनों मित्र परस्पर छाती से लगे मित्रता को रिश्तेदारी में बदलने के शुभ योग से प्रसन्नता के सागर में डूब गये । दोनों के हृदय की धड़कने मानों एक दूसरे के भावों को पढ़ रही थी ।

दोनों मित्र प्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीधर के पास पहुँचे । विवाह का मुहूर्त निकलवाया गया । योग्य समय पर विशाल अतिथियों की उपस्थिति में सुदर्शन की सगाई मनोरमा से कर दी गई ।

कुछ माह पश्चात् धूमधाम से दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया । सुदर्शन और मनोरमा की मन चाही मुराद पूरी हो गई । दोनों की जोड़ी रति-कामदेव सी पूरे नगर को आकर्षित करती रही । दोनों अपने जीवन को बासंती रंगों से भरने लगे । जीवन सुखमय और धर्ममय रूप से व्यतीत होने लगा । उनके प्रेम के प्रतीक स्वरूप सुकान्त नायक पुत्र ने जन्म लिया ।

सेठ वृषभदास ने व्यापार का बोझ सुदर्शन के कंधों पर डाला और जिनमती ने मनोरमा को घर की रानी ही बना दिया ।

सेठ-सेठानी का अधिकांश समय जिनभक्ति में व्यतीत होने लगा ।



चंपापुर के उद्यान में स्थित जिनमंदिर में वर्षों पश्चात् विहार करते हुए महर्षि समाधियुक्त मुनि ससंघ पधारे । अवधिज्ञानी चारित्रधारी-परीषदजयी मुनि महाराज के आगमन के समाचार को ज्ञातकर महाराज-महारानी सेठ-सेठानी एवं पूरा राजपरिवार, दरबार, श्रावकगण विशाल संख्या में उनके दर्शनार्थ

पधारे । सबने मुनिश्री के दर्शन वंदन का लाभ प्राप्त किया ।

“श्रावकजनो! जीवन की उपलब्धि आत्मा को जानना है । जिसने इस आत्माके निजतत्व को जाना उसने ही सबकुछ जाना । पुद्गल शरीर और अनश्वर आत्मा का संबंध यद्यपि अनादिकाल से हैं । ये दोनों नितांत भिन्न—भिन्न हैं । पर अमूढ़ता के कारण हम इन्हें एक मान कर आत्मा को ही भूल गये है । शरीर को तो सँवारा —पर आत्माकी उपेक्षा करते रहे । यह आत्मा ही स्वतन्त्र एवं निश्चल है । यह अक्षय ,अनन्त ,अव्यय है । वास्तव में हर आत्मा में परमात्मा स्वरूप है । पर ,मिथ्यात्व ,कषाय के अंधेपन के कारण हम इस सत्य को जानही नहीं सके । जब हमें भेदविज्ञान दृष्टि प्राप्त होती है । तब सब कुछ स्पष्ट हो जाता है । जिसकी यह दृष्टि सम्पन्न हो जाये फिर वह संसार के विषय कषाय से विरक्त हो जाता है । यह विरक्ति की भावना ही मनुष्य को मुक्ति के द्वार तक पहुँचाती है । ”महाराजश्रीने दर्शनार्थियों को संबोधित करते हुए धर्मके रहस्य को संक्षेप में समझा कर सबको धर्म लाभ कहा ।

महाराज के प्रवचनों से सेठ वृषभदास इतने प्रभावित हुए कि उसी समय उन्होंने संसार को त्यागने का संकल्प व्यक्त कर महाव्रत धारण करने का भाव महाराज श्री के समक्ष व्यक्त किया । पत्नी जिनमती भी पति के पदचिन्हों पर ही चलने को तैयार हो गई ।

दोनों ने अपना सबकुछ बेटे —बहू को सौंप कर दीक्षा लेने का संकल्प दोहराया ।

सुदर्शन और मनोरमा के ही नहीं सारे उपस्थित जनसमूह की आँखें छलछला उठी । पर अब वौराग्य को राग रोक न सकता था । सेठ वृषभदास एवं सेठानी जिनमती मुनि—आर्थिका दीक्षा धारण कर तप में लीन हे गये ।



“सुनिये ...सुनिये ”एक दासी ने कपिल के द्वार से गुजरते हुए सुदर्शन को रोकने के उद्देश्य से पुकारा ।

“कहो क्या है दासी ? क्यों पुकार रही हो ? ” सुदर्शन ने रुकते हुए जिज्ञासा से पूछा ।

“स्वामी आपके मित्र कपिल अश्वस्थ हैं। आपने उनकी खबर तक नहीं ली। वे आपके नाम की ही रट लगाये हुए हैं।” दासी ने उदासी का भाव व्यक्त करते हुए कहा।

“अरे मेरा मित्र अश्वस्थ है—मुझे पता ही नहीं। किसी ने मुझे समाचार भी नहीं दिया। अन्यथा मैं अभी तक उससे दूर कैसे रहना। चलो दासी मैं अभी चलता हूँ।” कहते हुए सुदर्शन ने कपिल के घर में प्रवेश किया।

“अरे मित्र कपिल तुम कहाँ हो। तुम्हें क्या हो गया है?”

“वे ऊपर शयन कक्ष में हैं।” दासीने इशारे से निर्देश किया।

सुदर्शन जल्दी-जल्दी मित्र के हाल जानने को ऊपर की मंजिल पर पहुँचकर उसके शयन कक्षमें पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उसका मित्र रजाई ओढ़े मुँह ढके पड़ा है।

“क्यों भाई कपिल तुम्हें क्या हो गया है? मुझे समाचार तक नहीं दिया। कहते-कहते सुदर्शन ने उसके सिर पर हाथ रखना चाहा।

तभी उसका हाथ पकड़कर सोते हुए व्यक्तिने अपनी छाती पर रखा।

छाती पर हाथ का स्पर्श होते ही सुदर्शन को लगा एक साथ अनेक बिच्छुओं ने डंक मार दिया है। उसने विद्युत्गति से हाथ हटाया और साथही रजाई भी हटादी। उसकी आँखें फटी रह गई जब उसने देखा कि कपिल के स्थानपर उसकी पत्नी सोने का ढोंग करके पड़ी है।”

“अरे भाभी तुम?”

“हाँ मेरे प्यारे सुदर्शन! तुम्हें पाने के लिए ही मुझे यह नाटक करना पड़ा है। तुम्हारा रूप मेरी आँखों में सदैव झूमता रहता है। तुम्हारी स्मृति मेरे मन को मथती रहती है। तुम्हारा संगम मेरी इच्छा है। आओ प्रिय मेरे साथ भोग-भोगो।” अंगड़ाई लेकर दोनों बाहें सुदर्शन के गले में डालते हुए कपिला ने कहा।

“भाभी तुम क्या कह रही हो। भाभी तो माँ के समान होती है। तुम विकारों से पीड़ित हो। यह सब क्षणिक कामुकता विवेकहीन बना देती है। मुझे क्षमा करो। भाई कपिल कहाँ है।”

“प्यारे यह समय उपदेश का नहीं है। आओं मेरी कामाग्नि को तृप्त करो। तुम्हारे मित्र तो एक सप्ताह के लिए परदेश गये हैं।” पुनः कपिला ने सुदर्शन को आलिंगन में बाधने का प्रयास किया।

“लेकिन भाभी मैं मजबूर हूँ । मैं देखने में सुन्दर अवश्य हूँ पर कुदरत ने मेरे साथ मजाक किया है मैं पुरुषत्वहीन नपुंसक हूँ । ”

“क्या ? आश्चर्य से कपिला की आँखें फटी की फटी रह गई । वह निराश सी होकर पलंग पर ही गिर पड़ी । ”

सुदर्शन ने इस प्रकार झूठ कहकर अपनी जान और चारित्र्य की रक्षा की।



आज वसंतोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा था । सारा नगर ही उद्यानों में उमड़ पड़ा था । बासंती रंग तन-मनको रंग रहा था । फूलों की सुगंध से आकृष्ट भ्रमर समुदाय गुनगुना रहा था । कोयल की कुहुक मन को प्रसन्न कर रही थी । गीतों का स्वर बाँसुरी में गूँज रहे थे । फागुन का मीठा वातावरण मन को लुभा रहा था । पीत-परिधानसज्ज धरती भी यौवन से छलक उठी थी । किशोर-किशोरी, युवा-युवतियाँ बसंतके रंगसे रंगीन हो उठे थे । कामदेव के पंचबाण हृदयों को वेध रहे थे ।

उद्यान में आज विशेष आयोजन था । विशेष रोशनी की झिलमिलाहट हो रही थी । आज स्वयं महाराज, उनकी महारानी अभयमती, अपनी पुरोहित सखी कपिला के साथ वसंतोत्सव की स्वयं शोभा बनी हुई थी । काम के बाण उसे विक्षत कर चुके थे ।

“सखी कपिला देखी यह कौन सौन्दर्यशालिनी युवती है । जिसकी गोद में इतना सुन्दर शिशु किल्लोल कर रहा है ।” एक सुन्दर सी देवी को पुत्र सहित देखकर रानीने अपनी सखी कपिला से पूछा ।

“महारानी मैं जानती तो नहीं पर यह कोई उच्चपरिवार की कुलवधू लगती है । देखो शिशु के साथ वह और भी सौन्दर्य शालिनी गरिमामय लग रही है । जैसे सच ही बालक को धारण कर धरती पर अवतरित हुई है । ”

“मैं जानती हूँ । ये हैं नगर सेठ सुदर्शन की धर्मपत्नी मनोरमा । और ये हैं उनके पुत्र सुकांत । ” पास खड़ी एक अन्य सखी ने परिचय दिया ।

“क...या.... ? ” आश्चर्य से कपिला का मुँह फटा रह गया । वह मन

ही मन जलभुन कर खाक हो गई । फिर भी बोली —“महारानी जी मैंने सुना है कि सुदर्शन तो नपुंसक है । उसके पुत्र कैसे हो सकता है ।”

“कपिला तुझे अवश्य धोखा हुआ है । यह किसी की फैलाई हुई । सोदेश्य अफवाह है । अरे मैंने सुदर्शन को देखा तो नहीं पर उसके रूप और गुण की प्रशंसा सुनी है । भला ऐसा परमपुरुष का पुरुष कैसे हो सकता है । ”रानी ने अभिप्राय व्यक्त किया ।

कपिला ने जैसे सब कुछ समझ लिया । उससे पिंड छुड़ाने हेतु ही सुदर्शन उससे झूठ बोला था । वह द्वेष भाव से जल उठी । सुदर्शन से बदला लेने का दुर्भाव उसके मन में पैदा हुआ । उसने अपनी एवं सुदर्शन की सारी बात अपनी सखी रानी से कहकर सुदर्शन के रूप की चर्चा खूब बढ़ा-चढ़ा कर कही । रानी के काम भाव को प्रशंशा के घृत से और भी भड़का दिया ।

“ रानी तुम्हें अपने रूप और चातुर्य पर अभिमान है । मैं तुम्हें तभी चतुर मानूँगी जब तुम सुदर्शन को अपना अंकशायी बनाकर कामतृप्ति कर सको।” कपिला ने रानी को उत्तेजित करते हुए कहा ।

अब रानी को वसंतोत्सव में कोई आनंद नहीं था । उसका रस ही उड़ गया था । बस उसे तो सुदर्शन का संसर्ग ही चाहिए था । वह वसंतोत्सव को बीच में ही अस्वस्थ होने का बहाना करके महल में लौट आई । उसके चेहरे पर उदासी छा गई । देह मलीन हो गया । वह अपने कक्ष में दुःखी होकर लेट गई ।

“क्या बात है बेटी पण्डित धाम ने प्यारसे सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा ।

“माँ ... ” कहकर रोते हुए धायकी छाती में मुँह छिपाकर रानी सिसकियाँ लेकर रोने लगी ।

“बेटी आखिर बात क्या है ? मुझे बता ।”

“धाय माँ मैंने सेठ सुदर्शन के रूप के बारे में सुनाया था और आज छतपर से उसको देखभी लिया । मेरे हृदय में उसका रूप तीर सा तिरछा होकर चुभ गया है । यदि सुदर्शन मुझे नहीं मिला तो मैं जहर खाकर सो रहूँगी ।”

“बेटी तुझे ऐसी बात शोभा नहीं देती । तू राजरानी है । यदि महाराज इसे जानेंगे तो तेरा क्या हाल होगा । दूसरे बेटी सुदर्शन बड़ा ही चरित्र निष्ठ , एक पत्नीव्रत का धारक है । वह अपनी जान तो दे सकता है पर कभी पर स्त्री सेवन का पाप नहीं करेगा । बेटी तू उसका ख्याल छोड़ दे । ”

“नहीं धायमाँ ? अब तो या सुदर्शन के साथ शयनसुख पाऊँगी या मृत्युकी सैय्या पर ही लेदूँगी । ”

रानी की इस जिद से धायमाँ भी दुखी और चिन्तित हो उठी। बचपन से जिसे गोद में खिलाया था—उसे कैसे मर जाने दे ? रात भर धाय इसी चिन्ता में डूबी रही कि आखिर क्या करे। महल के बाहर सात-सात परकोटे व विशाल दरवाजे हैं। किसी का गुप्त रूपसे महल तक लाना भी संभव नहीं। आखिर उसने अपनी कूटनीति से मार्ग निकालने का उपाय सोचा।

“ भाई प्रजापतिजी आप पूर्ण पुरुष के आकार की सुन्दर सात पुरुष मूर्तियाँ तैयार कर दे। महारानीजी आपको मुँह मागा इनाम देगी। ” धाययाँ ने कुम्हार को आदेश दिया। कुम्हार ने महारानी का आदेश स्वीकार कर सात मिट्टी की पुरुष मूर्तिया तैयार की।

“रुक जाओ कैन अन्दर जा रहा है ? द्वार पाल ने मिट्टी की मूर्ति ले जाते हुए धाय माँ को रोका। ”

“ क्या मेरा भी महल में जाना निषिद्ध है ? ”

“हाँ रात्रि में राजमहल में तुम भी नहीं जा सकती। ” द्वारपाल के रोकने पर भी धाय मां ने बलपूर्वक प्रवेश करने की चेष्टा की। इसी रोक-टोक में मूर्ति गिरकर टूट गई।

“द्वारपाल तूने इस कामदेव की मूर्ति को तोड़कर रानी का कोप मोल लिया है। रानी का आज उपवास था और उसे इसकी पूजा करनी थी। मैं रानी से तेरी शिकायत करके तुझे सहकुटुम्ब दण्ड दिलवाऊँगी। ” धाय मां के इस कथन को सुनकर द्वारपाल आगत कष्ट के भय से कांप उठा। और धाय मां से माफी मांगने लगा और कहा कि—“भविष्य में ऐसी गलती नहीं होगी। ”

इस प्रकार धाय मां ने अपने त्रिया चरित्र एवं कुटिल नीति से अपनी धाय होने के पद का दुरुपयोग करके सभी द्वारपालों को उसने अनुकूल कर लिया। सभी द्वारपालों को उसने यह विश्वास दिलाया कि वह रानी की पूजा के लिए मिट्टी की मूर्तियाँ ही ले जायेगी।



आज अष्टमी का दिन है । सुदर्शन सेठ सूर्यास्त होने पर श्मशान में जाकर समाधि में बैठे थे । प्रतिक्रमण के पश्चात सामयिक में लीन हो गए थे । पण्डिता धाय उसी स्मशान में जाकर जब वे समाधि में थे उन्हें अपने कंधे पर उठाकर महल में रानी अभयमती के कक्ष में ले आयी । आज कंधे पर मिट्टी की मूर्ति नहीं थी , समाधिस्थित सेठ सुदर्शन थे । सभी द्वारपालों ने समझा कि रोज की तरह धाय मां रानी की पूजा के लिए मिट्टी की ही मूर्ति ही ले जा रही है । अतः किसी ने उन्हें रोका-टोका नहीं । जब सुदर्शन की समाधि टूटी ,और अपने आप को सजे-धजे राजमहल में पलंग के ऊपर पाया तो वे आश्चर्य में डूब गये ।

“क्यों चकित हो रहे हैं । सेठजी ? ” आप इस समय महारानी अभयमती के शयनकक्ष में हैं । हे प्रिय! आपका सुदर्शन रूप और मेरा यौवन आज एक होकर आनन्द लोक में विहार करेंगे । कामोत्तेजक रानी ने अपनी बाहें सुदर्शन के गले में डाल दीं ।

“महारानी जी आपने यह क्या अनर्थ किया । रानी तो माँ के समान होती है । फिर मैं तो पुरुषत्वहीन नपुंसक हूँ । ” सुदर्शन ने विनयपूर्वक कहा ।

“प्यारे सुदर्शन तुम कपिला को बेवकूफ बना सकते हो , मुझे नहीं । मैंने तुम्हारी प्रशंसा भी सुनी और तुम्हारे दर्शन से मैं घायल हो गयी । प्यारे इस रूप को भोगो और आनन्द प्राप्त करो । यौवन को संयम मे कसकर बरबाद मत करो । प्रिय यह वसन्त की रात, रजनीगन्धा की सुगन्ध ,देखो अष्टमी का दमकता हुआ चन्द्र ,मन्द समीर के झोंके ,यह एकान्त और खुला यौवन क्या तुम्हें उद्दीप्त नहीं करता ?” रानी ने अनेक काम चेष्टाएँ करते हुए कहा ।

“रानी देह तो रुधिर और मांस का पुतला है । यह अनन्त रोगों का घर और घिनोना है । यह तो वह फूटा घड़ा है ,जिससे गन्दगी निरन्तर बहती रहती है । यह शरीर मरणधर्मा है । बुढ़ापा इसे दबोच लेता है । ऐसे शरीर का मोह क्यों ? रानी जी इस गन्दे शरीर में जो पवित्र आत्मा है उसका चिन्तन करो , यही आचार्यों का उपदेश है । मैं चाहता हूँ कि तुम भी विषय वासना के नागपाश से मुक्त हो जाओ । रानी मैं एक पत्नीव्रत का धारक हूँ तुम्हारी कामोत्तेजक चेष्टाएँ तुम्हारा नरकगति का बन्ध कर रही हैं । ” सुदर्शन ने रानी को समझाने का प्रयत्न किया ।

रानी ज्यों-ज्यों अधिक कामोत्तेजक होकर सुदर्शन पर वाणी या दृष्टि के

प्रहार करती त्यों-त्यों सुदर्शन अपने चरित्र में और भी दृढ़ हो जाते। वे निरन्तर पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते रहे। रात बीतने को थी। भोर के स्वर फूटने लगे थे। रानी आखिर अपनी कुचेष्टाओं में सफल न हो सकी। उसे भय लगा कि कहीं वह बदनाम न हो जाए, अतः दुराचारणी और कुलटा नारी के अनुरूप नाटक करते हुए उसने स्वयं अपने वस्त्र फाड़ डाले। नाखूनों से अपना शरीर क्षत कर डाला। और बचाओ-बचाओ चिल्लाकर रोने लगी।

रानी की चिल्लाने की आवाज सुनकर द्वारपाल दौड़े आए। उन्होंने तुरन्त राजा को सूचित किया। राजा रानी के शयनकक्ष में आये। राजा को आता देखकर अभयमती और जोर से रोने लगी। रो-रो कर बोली - "इस नगर सेठ ने मेरे कक्ष में आकर मुझ पर बलात्कार करने की कोशिश की है।" और अपने विश्वत खरोँच वाले अंगों को दिखाने लगी।

सुदर्शन तो इस घटना को उपसर्ग जानकर समाधि लीन हो गए। राजा रानी के रुदन फटे हुए वस्त्र और शरीर की खरोँच को देखकर आपे से बाहर हो गए। उनका विवेक ही जैसे नष्ट हो गया। उन्होंने एकाएक सैनिकों को आदेश दिया कि - "सेवको इस अधम पापी को स्मशान में ले जाकर इसका वध कर दो।" रानी को छाती से लगाकर उसे सांत्वना देने लगे। रानी भी अपने बनावटी आसुओं और अपनी अदाओं से अपना शीलवती होने का अभिनय करने लगी।

सैनिक, सुदर्शन को घसीटते हुए स्मशान में ले गए और उनका सिरच्छेद करने के लिए तलवार का बार किया। लेकिन, उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा, जब तलवार का बार गले का पुष्पहार बन गया। जितनी बार भी वे आघात करते उतने ही पुष्पहार सुदर्शन के गले में बढ़ते जाते। सैनिकों ने यह समाचार महाराज को दिया। महाराज को आश्चर्य हुआ। उन्होंने अन्य सैनिकों को भेजा, लेकिन वही पुनरावर्तन। आखिर राजा स्वयं अपनी सेना को लेकर स्मशान भूमि में सुदर्शन का वध करने पहुँचे।



“महाराज यहाँ स्मशान में यह कौन सी सेना खड़ी है ? अभी तो यहाँ कोई

नहीं था । ”दूत ने राजा को सेना के बारे में बताया । उन्होंने विस्तार से सेना का वर्णन किया । दोनों ओर से एक प्रकार का युद्ध ही छिड़ गया । राजा ने देखा कि शत्रु की सेना बढ़ती ही जा रही है और उनके सैनिक मरण की शरण हो रहे हैं । वे भी आश्चर्य चकित थे ।

“ महाराज आप युद्ध करना छोड़ दे । सुदर्शन निर्दोष हैं । अक अजनबी न महाराज को आश्चर्य में डूबा देखकर कहा ”

“तुम कौन हो ” राजा ने जिज्ञासा से पूछा ।

“महाराज मैं यक्ष हूँ । यह सारी सेना मेरी है । आप रानी के गलत बहकावे में आकर एक साधु पुरुष का वध करने का पाप करने जा रहे हैं । ” यक्ष ने रानी के कक्ष की घटना राजा को सुनाई ।

राजा ने जब सत्य को जाना तो उसे पश्चाताप हुआ । उसने सुदर्शन के चरणों में गिरकर क्षमा याचना की । अपनी विवेकहीनता पर पश्चाताप किया । निर्विकार भाव से समाधि में लीन सुदर्शन तो जैसे इन सब अनभिन्न थे । उन्हें राजा या रानी किसी पर कोई रोष नहीं था । इसे वे अपने अशुभ कर्मों का ही फल मानकर उपसर्ग के रूप में सहज भाव से सहन कर रहे थे । रानी अभयमती ने जब अपनी दूती द्वारा इस चमत्कार की बात सुनी तो वह भयभीत हो गयी , और महल से भागकर एक वृक्ष से लटककर उसने आत्महत्या कर ली । दुर्ध्यान से मरने के कारण रानी नीच योनि में व्यंतरी हुई ।

सुदर्शन सेठ अभी भी ध्यानस्त मुद्रा में बैठे थें । चेहरे पर परमशान्ति है ॥

“श्रेष्ठिवर सुदर्शन मुझे क्षमा करें । विवेकहीन होकर मैंने आप के साथ जो अन्याय न अत्याचार किया है । उसके लिए मैं शर्मिन्दा हूँ । मैं अपने अपकृत्य के लिए आपका क्षमाप्रार्थी हूँ । प्रायश्चित के रूप में मैं चाहता हूँ कि आप मुझे क्षमा करें, एवं मेरा आधा राज्य स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें । ”

“महाराज मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं । मैंने तो उस समय जब धाय पण्डिता मुझे स्मशान से ले जा रही थी ,तभी प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि इस उपसर्ग से मैं जीवित रहूँगा तो, और यदि मुक्ति प्राप्त करूँगा तो पुनः गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करूँगा । मैं जिनेश्वरी दीक्षा धारण करके आत्मकल्याण करूँगा । अतः अब मेरा जब गृहस्थ जीवन में ही लौटने का इरादा नहीं है तो फिर राज्य लेने का प्रश्न ही कहाँ ? राजन् आप को क्षमा मांगने की आवश्यकता

नहीं है । यह सब मेरे ही पूर्व जन्मों के अशुभ कर्मों का उदय है । ”



कुछ समय पश्चात सेठ सुदर्शन सीठे जिनालय में पहुँचे वहाँ विराजमान विमलवाहन मुनि की वन्दना की । और शान्त चित्त होकर दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की ।

सेठ सुदर्शन के इस निर्णय से सभी चकित थे । इतना श्रीमंत सेठ सचमुच में जो सुदर्शन है ,ऐसा रूपवान युवा धन-सम्पत्ति का त्याग कर रहा है । यह आश्चर्यजनक घटना है । सारा नगर इस अलौकिक त्याग को देखने और अनुमोदना करने एकत्र हो गया । राजा मन्त्रीगण सभी परिजन और पुरजन एवं मित्रों ने उन्हें हर तरह से समझाने का प्रयत्न किया । मुनि-जीवन के कष्टों से भयभीत किया । पत्नी मनोरमा और पुत्र सुकान्त ने भी अश्रु भरे नयनों से आग्रह किया । लेकिन अब सुदर्शन सेठ पर इसका कोई प्रभाव नहीं हो रहा था । उन्होंने सबको सम्बोधित करते हुए अपने उद्गार व्यक्त किए -

“महाराज! मन्त्रीगण! प्रजाजनों ! आप सब का मुझे स्नेह और आदर मिला है । छोटे से जीवन में मैंने संसार के वैभव को भोगा है । मुझे मेरी पत्नी मनोरमा ने अपार सुख दिया है ,वे मेरी सही अर्थों में धर्मचारिणी रही है । मेरे पुत्र सुकान्त भी आज्ञाकारी योग्य पुत्र हैं । मुझे अपने मित्र कपिल का प्रेम मिला है । लेकिन पिछले दो दिन की घटनाओं ने मुझे यह आभास करा दिया कि देह का सुख वासनाओं को जन्म देता है । और ये वासनाएँ ही समस्त क्लेशों का कारण हैं । मुझे यह अनुभव हुआ है कि इस शरीर का सुख ही भव-भव के दुःख का कारण है । भगवान की आराधना सुख का कारण हो सकती है । मैं उस आत्मारूपी भगवान के सानिध्य को पाने के लिए इस भौतिक संसार का त्याग कर रहा हूँ । मेरे द्वारा आप किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा हो तो मुझे क्षमा करे । यदि किसी ने मुझे कष्ट दिया हो तो भी मैं उसे क्षमा करता हूँ । आप सब मुझे प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद और शुभकामनाओं के साथ आज्ञा दें । ” सबसे क्षमायाचना करते हुए पुनः मुनि महाराज से दीक्षा की याचना की ।

लोगों के मुख से जयजयकार की ध्वनि गूँज उठी । लोगों ने देखा कि सेठ

सुदर्शन के शरीर से कीमती आभूषण वस्त्र उतर रहे हैं । जैसे मोह और माया स्वयं तप के भय से भाग रहे हैं । लोगों ने देखा कि सौन्दर्य के प्रतीक केशों को सुदर्शन ने घास पूस की तरह उखाड़ दिए हैं । उपस्थित जन समुदाय की आँखें अश्रु की अर्घ्य चढ़ा रही थीं, और वाणी मुनि सुदर्शन की जय-जयकार से पवित्र हो रही थी । मुनि सुदर्शन महाव्रतों का कठोरता से पालन कर रहे थे । उन्हें जैसे अब देह का ध्यान ही नहीं था । उनका अधिकांश समय आत्मतिन में ही जाता ।



मुनि सुदर्शन अनेक नगरों की यात्रा करते हुए ,पाटलीपुत्र पहुँचे । आहार के लिए जब उन्होंने नगर में प्रवेश किया तो नगर की देवदत्ता नामक वेश्या जिसके यहाँ कुटिला पण्डित धाय राजा के डर से छिपी हुई थी उसने सुदर्शन को देखते ही देवदत्ता को भड़काते हुए कहा कि —“ यही वह सुदर्शन मुनि है जिसके कारण रानी को आत्महत्या करनी पड़ी ।”

मुनि सुदर्शन का इस अवस्था में भी इतना आकर्षक व्यक्तित्व देखकर देवदत्ता के मन में वासना की अग्नि जल उठी । उसने अपनी वेश्या बुद्धि का प्रयोग करने का निश्चय किया । उसने तुरन्त मुनि के पाड़िगाहन का निश्चय किया । मुनि महाराज को पाड़िगा कर वह आदर सहित अपने भवन में ले आई ।

“महाराज आप अभी जवान हैं , सुन्दर हैं , संसार के भोगो को भोग सकते हैं । इस योग को छोड़ो और सुख भोगो । ” वेश्या ने अपना अभिप्राय व्यक्त किया ।

“भगिनी तुम्हें यह शोभा नहीं देता । इस रोग के घर गलित शरीर पर इतना मोह ठीक नहीं । शरीर का सदुपयोग तो तपश्चरण में है । तुम भी इस का उपयोग आत्मकल्याण में करो ।” मुनि सुदर्शन ने उसे समझाने का प्रयत्न किया ।

“ मेरे ऊपर तुम्हारे उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता । तुम्हें मेरे

साथ विषय भोग करना ही पड़ेगा ।” कहते-कहते देवदत्ता ने मुनि को उठाकर पलंग के ऊपर रख दिया ।

“मुनि सुदर्शन ने इसे उपसर्ग मान कर यह प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग दूर नहीं होता तब तक मैं आहार ग्रहण नहीं करूँगा । और यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी नगर में प्रवेश नहीं करूँगा । इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वे सन्यास ग्रहण कर सामायिक में लीन हो गए ।” तीन दिन तक देवदत्ता और पण्डिता धाय कामोद्दोषक उपसर्ग करती रही । परन्तु सुमेरू की तरह दृढ़ सुदर्शन मुनि को चलित नहीं कर सकी । आखिर थककर क्रोध से उन्होंने मुनि सुदर्शन को उसी मुद्रा में उठाकर स्मशान में रखवा दिया ।

स्मशान में मुनि सुदर्शन समाधि में लीन हैं । तभी आकाशमार्ग से विमान में जा रही व्यन्तरी जो पूर्वजन्म में रानी अभयमती थी । उसका विमान रूक गया । उसने जैसे ही नीचे देखा तो क्रोध से बोलने लगी –“अरे यह तो वही सुदर्शन है । जिसके कारण मुझे आत्महत्या करनी पड़ी थी । अरे दुष्ट उस समय तो किसी यक्ष ने तेरी रक्षा की थी । लेकिन अब देखती हूँ कि तुझे कौन बचाता है ।” क्रोध से भरी बदले की दुर्भावना से प्रेरित होकर वह अनेक उपद्रव करने लगी । मुनि सुदर्शन पर ज्यों ज्यों उपसर्ग होते त्यों-त्यों उनकी दृढ़ता और भी बढ़ती जाती । और देखते ही देखते मुनि सुदर्शन को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई । देवों ने गन्धकुटी रूप समवशरण की रचना की ।

मुनि केवली सुदर्शन के इस अतिशय को देखकर व्यन्तरी पण्डिता धाय और देवदत्ता को पाश्चात्ताप हुआ । उनकी दृष्टि बदली । उन्होंने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । मनोरमा ने भी दीक्षा ग्रहण की ।

केवलज्ञान प्राप्तकर केवली सुदर्शन विहार करते हुए लोगों को मोक्ष मार्ग प्रशस्त करते रहे । अन्त में समाधिमरण पूर्वक इस नश्वर देह को छोड़कर मोक्ष पद के अधिकारी बने ।



गजकुमार की कथा

“नगरजनों ध्यान से सुनो । जो भी बहादुर आक्रमणकारी शत्रु पोदन पुर के राजा अपराजित को परास्त कर, उसे कैद कर, महाराज के सामने उपस्थित करेगा । उसे महाराज वासुदेव मुँह मागा ईनाम देंगे । ” पूरे नगर में राज्य की ओर से यह झूड़ी पिटवाई गई । सारे नगर में घर-घर हर व्यक्ति ने यह घोषणा सुनी । पिछले कई महीनों से पोदनपुर के राजा अपराजित ने द्वारिका को घेर रखा था । प्रजा जैसे अपने ही नगर में बन्दी थी । युवकों ने इस घोषणा को सुना । उनकी बाहें फड़कने लगी । परन्तु किसी को अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं हो रहा था । बड़े-बड़े योद्धा भी मात खा चुके थे ।

“पिताजी मैं अपराजित को पराजित करके आपके चरणों में डाल दूँगा।” विनय परन्तु दृढ़ता से स्वयं राजकुमार गजकुमार ने अपने पिता वासुदेव से प्रार्थना की ।

“बेटा अभी तुम किशोर हो । कम उम्र के हो इतनी बड़ी सेना से लड़ना खेल नहीं है ।” महाराज वासुदेव ने पुत्र को समझाया ।

“हाँ बेटा तुम्हारे पिताजी सच कह रहे हैं । अभी तुम्हारे युद्ध करने की नहीं बल्कि आनन्द मनाने के दिन हैं । अभी तुम कोमल बालक हो । ” माता गन्धर्वसेना ने गजकुमार के मस्तक पर वात्सल्य से हाथ रख कर अश्रु पूर्ण नेत्रों से कहा ।

“पिताजी क्षत्रिय जन्म से ही लोहे का बना होता । जब शत्रु दरवाजे पर खड़ा हो , उस समय क्षत्रिय का धर्म होता है कि वह अपनी जान की बाजी लगाकर भी अपने राज्य और प्रजा की रक्षा करे । मैं दूध पीता बच्चा नहीं हूँ । पिताजी, आप उसी द्वारिका के अर्धचक्री महाराज हैं जिस कुल में भगवान नेमिनाथ और श्रीकृष्ण ने जन्म लिया । जिनके प्रताप को सुनकर शत्रुओं के चेहरे मुरझा जाते थे । और माँ आपको विदित है कि महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु मात्र सोलह वर्ष का किशोर था, जिसने कौरव सेना के छक्केछुड़ा दिये

थे । फिर मैं तो बीस वर्ष का हो चुका हूँ । बस आप दोनों आशीर्वाद दें कि मैं अपने लक्ष्य में सफल होकर लौटूँ ।" राज कुमार ने कहते-कहते माँ-बाप के चरणों का स्पर्श किया ।

महाराज वासुदेव और रानी गन्धर्वसेना ने गजकुमार के दृढ़ निश्चय को जानकर उसे छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया । महाराज को इस बात का गर्व हुआ कि उनका बेटा वीरता के गुणों से भरा है । माता को भी गर्व हुआ कि उसका दूध आज सार्थक हो गया । दोनों ने कुम-कुम तिलक लगाकर बेटे को आज्ञा दी । राजकुमार युद्ध के वेश में और भी सुन्दर लग रहा था । मानो कामदेव स्वयं वीरता धारण कर प्रस्तुत हुआ था । सौन्दर्य और वीरता के इस समन्वय ने उपस्थित जनसमूह का मन जीत लिया । अनेक लोग गजकुमार की सुन्दरता और बहादुरी के गुणगान करने लगे, और अनेक लोगों की आँखें इस विचार से भीग गईं कि इतना सुकुमार राजकुमार युद्ध की भीषणता को कैसे झेलेगा ? युद्ध की रणभेरी के स्वर गूँज रहे थे । उन स्वरों को सुन सैनिकों के शरीर युद्ध के लिए कसमसा रहे थे । कुमारी कन्यायें और सुहागनें सैनिकों को कुम-कुम का तिलक कर रही थी, और आंसुओं का अर्ध चढ़ा रही थीं । वीर माता गन्धर्वसेना ने अपने बेटे के हाथ में तलवार देते हुए पुनः उसके दीर्घ जीवन और विजय की कामना की । हजारों कण्ठों से विजय की कामना के गीत फूट पड़े । वीरों की आरती उतारी गई । वीरों के मन उत्साह और जीत की प्रेरणा से उभर रहे थे ।

बहादुर गजकुमार के नेतृत्व में चतुरंगिणी सेना रणवाद्य का घोष करती हुई किले से बाहर युद्धभूमि की ओर बढ़ने लगी । सेना की गति ऐसी लग रही थी, जैसे अपने नागपाश में शत्रुओं को बांधने निकल पड़ी हो ।

युद्ध का मैदान दोनों ओर की सेनाओं की मुठभेड़ के कारण धूल से आच्छादित हो गया । धरती से उठी धूल ने आकाश के सूर्य को भी धूमिल कर दिया । हाथियों की चिघाड़, घोड़ों की हिनहिनाट और सैनिकों के चीत्कार से सारा वातावरण कोलाहलमय हो गया । दोनों ओर से तीव्र प्रहार हो रहे थे । अनेक घड़ से कटे मस्तक भूलुंठित हो रहे थे । अनेकों के शरीर क्षत-विक्षत हो रहे थे । किसी का हाथ, किसी का पांव कट चुका था । शरीर से रुधिर के

फव्वारे ही छूट रहे थे । लगता था कि रुधिर की नदी बह रही हो । हाथी , घोड़े के कटे हुए अंग बिखरे पड़े थे । घायलों की कराह तो तलवारों की टकराहट में दबी जा रही थी । युद्ध अपनी चरमसीमा पर लड़ा जा रहा था । दोनों ओर से नये-नये युद्धव्यूह रचे जा रहे थे । पराजय और विजय कभी गजकुमार की ओर तो कभी अपराजित की ओर झुक जाती । आज युद्ध का पन्द्रहवां दिन था । अभी तक कोई निर्णय नहीं हो पाया था । गजकुमार ने आज विशेष युद्धव्यूह की रचना की । आज के युद्ध का नेतृत्व उसने स्वयं किया । रथपर सवार गजकुमार ऐसा सुशोभित हो रहा था कि मानों आकाश में सूर्य का रथ चल रहा हो । उसने अपराजित को ललकारा । दोनों ओर से भयानक घात-प्रतिघात होने लगे । आखिर संध्या से कुछक्षण पूर्व ही गजकुमार ने अपराजित को अपने कुछ युद्ध कौशल और वीरता से बन्दी बना लिया । अपराजित के बन्दी होते ही उसकी सेना में भगदड़ मच गई । उसके सैनिक निराश हो गये और शस्त्र त्याग दिए । रुधिर गजकुमार द्वारा अपराजित को बन्दी बनाये जाने का समाचार जानकर उसकी सेना का उत्साह अनेक गुना बढ़ गया । सैनिक प्रसन्नता से उछलने , कूदने और नाचने लगे । विजय का तूर्यनाद बज उठा । गजकुमार अपराजित को बन्दी बनाकर द्वारिका की ओर लौटे ।

राजकुमार , गजकुमार अपराजित को पराजित कर बन्दी बनाकर लौट रहे है , यह समाचार राजभवन और पूरे नगर में बिजली की भांति फैल गया । महाराज , महारानी अधिकारीगण और समस्त प्रजा अपने राजकुमार का स्वागत करने और पराजित शत्रु को देखने के लिए उमड़ पड़ी । महाराज ने पुत्र को गले से लगाया । माँ ने बेटे का माथा चूमा । नगर जनों ने हर्षोल्लास से अपनी प्रसन्नता व्यक्त की । विजयी सेना पर फूलों की वर्षा की गई । चारणों ने विरूदावली गायी । और सभी का सम्मान किया गया । महाराज ने विजित सैनिकों को पुरस्कार बांटे । मातृभूमि के लिए जो शहीद हो गए , उनके परिवार को आश्वासन देकर उन्हें ? यथोचित धन राशि प्रदान की गई ।

पराजित अपराजेय को बन्दीगृह में डाल दिया गया । महाराज ने उसी समय राजकुमार गजकुमार को युवाराज पद पर आसीन करने की घोषणा की । इस शुभ निर्णय ने लोगों की प्रसन्नता को ओर भी बढ़ा दिया । वे गजकुमार की वीरता और राजा की सहृदयता की भूरी-भूरी प्रसंशा करने लगे ।

युद्ध के विजय ने गजकुमार में आत्मश्लाघा के भाव भर दिए । युवराज पद ने उसे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होने से अहमवादी भी बना दिया । चाटुकारमित्रों ने उसकी इन स्वच्छन्द वृत्तियों में घी का कामकर उन्हें और भी भड़का दिया । सुशील गजकुमार पद, प्रतिष्ठा और सम्मान को स्वस्थता से ग्रहण न कर सका, और वह स्वच्छन्दता के प्रवाह में बहने लगा । उसमें दुराचारी मित्रों के बहकाने के कारण काम वासनाओं की ज्वालायें भड़कने लगीं ।

गजकुमार का अनुराग दिन-प्रतिदिन स्त्रियों की ओर विशेषकर युवा कन्याओं की ओर अधिक बढ़ने लगा । इस कार्य में उसके दुराचारी मित्रों ने उसका भरपूर साथ दिया । राजकुमार ने युवराज पद की आड़ में अधिकार के डंडे से और चापलूस साथियों की मदद से अपनी दुराचारी वृत्तियों को बेलगाम बना दिया । गजकुमार के आसपास व्याभिचारी और दुराचारियों का जमघट जुट गया । वे लोग इसी टोह में रहते कि किसकी लड़की जवान हुई है । किसकी खूबसूरत बहू है । वे लोग ऐसी युवतियों का बड़ा चढ़ा कर रसपूर्ण शैली में रूपवर्णन करते, जिससे गजकुमार की वासनाएँ भड़क उठतीं । ऐसी कन्याओं, कुमारिकाओं और नववधुओं को फुसला कर या भय बताकर अपहरण किया जाता और वे गजकुमार के शयनकक्ष में पहुँचा दी जातीं । गजकुमार का यह रोज का नियमित कार्य सा हो गया ।

अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियों की इज्जत और राजसत्ता के भय से वे विचारी उफ तक न कर पाती । अनेक स्त्रियाँ जीवन भर इस व्यथा को झेलती रहीं । जिस किसी पुरुष ने इस दुराचार को रोकने का थोड़ा भी प्रयत्न किया तो उसका नामोनिशान तक मिटाया जाने लगा । अब व्याभिविचार के साथ गजकुमार की ये हिंसक वृत्तियाँ भी बढ़ने लगीं ।



पोदनपुर में सेठ पांसुल का भी बड़ा कारोबार था । पांसुल युवा व्यापारी था । उसकी पत्नी सुरति सचमुच रति का अवतार थी ।

“युवराज आज मैंने ऐसी कली को देखा है जिसके सामने तीनलोक की सुन्दरता भी लजा जाए । यदि वह आपकी अंकशयिनी न बनी तो सब बेकार है ।

“एक चापलूस साथी ने सुरति सेठानी की रूप राशि का वर्णन करते हुए गजकुमार को उत्तेजित किया ।

“कौन है वह रूपांगना ? ” गजकुमार ने कामपीड़ित होकर पूछा ।

चापलूस साथियों ने सेठ पांसुल और उसकी पत्नी सुरति का पूरा विवरण प्रस्तुत किया ।

“लेकिन यह कैसे संभव है ? सेठ पांसुल नगर के प्रतिष्ठित श्रेष्ठी हैं । यदि यह भेद खुल गया और पिताजी के कानों तक यह बात पहुँची तो अनर्थ हो जाएगा । ” गजकुमार ने शंका करते हुए कहा ।

“आप इसकी चिन्ता न करें । यह हम पर छोड़ दें । आज रात सुरति आपके शनयकक्ष में होगी । ” एक साथी ने डींग मारते हुए कहा ।

अर्ध रात्रि के समय तीन, चार लोग सशस्त्र पांसुल की हवेली पर पहुँचे , और उसे जान से मार डालने की धमकी देकर सुरति का अपहरण कर उसे गजकुमार के पास भेज दिया । सेठ पांसुल को यह भी धमकी दी गई कि यदि वह इस घटना को महाराज तक ले जाएगा तो उसे सुरति और अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ेगा ।

बेचारा पांसुल इन धमकियों से डर गया । वह क्रोध से कांप उठा । परन्तु राज्य सत्ता से टकराने की हिम्मत न होने से खून का घूँट पीकर रह गया ।

सुरति के साथ गजकुमार ने रातभर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी मजबूरी का फायदा उठाकर उसकी देह से खिलवाड़ किया । अबला नारी इस राक्षस के पंजो में निरीह पशु की तरह तड़फती रही । पांसुल का क्रोध धीरे-धीरे बैरभाव में परिवर्तित होता रहा ।



द्वारिका के उद्यान में आज स्वयं भगवान नेमिनाथ पधारें हैं । बलभद्र, वासुदेव आसपास के राजा सभी उनके दर्शनों को उमड़ पड़े थे । सभी भक्तिभाव से उनकी पूजा अर्चना कर रहे थे । सारा नगर ही नहीं पूरा प्रदेश , तीर्थंकर प्रभु के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा था । सम्पूर्ण वातावरण ही धर्ममय हो गया था । प्रकृति में भी वासन्ती उल्लास फैल गया था । विशाल जनसमूह को भगवान की

दिव्यवाणी— श्रवण का अवसर मिला था । गुरु गंभीर वाणी में प्रभु उपदेश दे रहे थे —“भव्यजीवों ! देह का सुख सच्चा सुख नहीं है । अनन्त जन्मों से यह जीव इस शरीर के सुख के लिए अनेक उपाय करता रहा । परन्तु न तो इसे रोगी होने से बचा सका और न बुढ़ापे या मृत्यु से ही बचा सका । मनुष्य ने शीलव्रत को तोड़कर भोग-विलास के लिए कुशील का आचरण किया । वह व्यभिचारी बना । उसने बहन-बेटी के भेद को नहीं जाना । काम भोगी मनुष्य कौए और गीध की भांति रूधिर और मांस के शरीर को नोचते रहे । ज्यों-ज्यों वह वासनाओं के वशीभूत हुआ, त्यों-त्यों उसकी कामाग्नि और भी भड़कती रही । अनन्त छिद्रों से फूटा हुआ यह शरीर रूपी घड़ा उसे अपने रूपजाल में फँसाये रहा । यह मनुष्य इस कामतृप्ति की एक शहद रूपी बूंद के लिए संसार के महानतम कष्टों, भयों और भविष्य के कष्टों एवं दुर्गति के कष्टों से अनजान रहा ।

बन्धुओं ! इस कुशील के कारण मनुष्य मानसिक रूप से दूषित हुआ और शरीर से अपवित्र और रोगी बना । यदि हम सच्चा सुख चाहते हैं तो हमें इसी शरीरी सुख की कामनाओं से मुक्त होते हुए महान ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । गृहस्थ के रूप में हम एक पत्नी व्रत के धारक बने । और सद्चरित्र को अपनायें यह ब्रह्मचर्य का प्रथम सोपान है । अपनी पत्नी के सिवाय अन्य सभी स्त्रियों को उम्र के अनुसार माँ, बहन और बेटी समझे । क्रमशः ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संसार को त्यागकर अपने ब्रह्मरूपी आत्मा में रमण करें । यही सच्चा शील धर्म है । यह मुक्ति का पंथ है । ” महाराज ने शील के समर्थन में अनेक ब्रह्मचर्य व्रत के धारकों की कथाएँ उदाहरण के रूप में सुनाई । भगवान का यह उपदेश लोग गंभीरता से सुन रहे थे । उपदेश रूपी स्वातिबूँदें उनके मन रूपी सीप में मानों मोतीका रूप धारण कर रही थी । लोग मंत्र मुग्ध थे । अनेकों हृदय ब्रह्मचर्य के पालन को लालायित हो उठे । भगवान का उपदेश पूर्ण होने पर लोगों ने उनकी भावपूर्ण स्तुति की ।

धीरे-धीरे लोग अपने निवास को लौटने लगे । प्रायः पूरा उद्यान ही खाली हो गया । पर गजकुमार तो ऐसा विचारों में खो गया कि उसे पता ही नहीं चला कि कब प्रवचन पूरा हुआ और कब लोग अपने घरों को लौट गये । भगवान की वाणी का प्रभाव उसके मन-मस्तिष्क को मथने लगा । वह अपने ही

जीवन की अतीत की किताब पढ़ने लगा । अपने व्यभिचारी जीवन की सारी घटनाओं पर विचार करने लगा । हर घटना का एक-एक दृश्य उसके मन पर छाने लगा । आँखों के सामने तैरने लगा । उसने किन-किन स्त्रियों के साथ दुराचार किया था उनकी तस्वीरें उसके सामने दृश्यमान होने लगीं । उनके चेहरे की मजबूरी, आँखों का भय साकार होकर उभरने लगे । उसका मन पहली बार इन दुष्कृत्यों से दुखी होने लगा । इस दुख ने उसमें आत्मग्लानि उत्पन्न की । पश्चात्ताप की सरिता हृदय को भिगोने लगी । उसका हृदय दुख से कातर हो उठा । उसने मन ही मन उन सभी नारियों की क्षमा याचना की जो उसकी हवश की शिकार हुई थी । उसकी आँखों से अश्रु की धारा बह निकली । पश्चात्ताप के इन आँसुओं ने उसके हृदय को पवित्र बना दिया ।

“महाराज ! मैं बड़ा पापी हूँ । मैंने अब तक का जीवन व्यभिचार में खो दिया । भोगों की अग्नि में मैं जलता रहा । ” गजकुमार ने अपने गंदे अतीत की किताब भगवान के सामने पढ़ कर सुना दी । एवं याचना करते हुए कहा - “प्रभु अब मैं इस नारकीय जीवन से मुक्त होना चाहता हूँ । मैं पुनः उस अग्नि के सम्पर्क में नहीं जाना चाहता । मैं आपके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत का स्वीकार करता हूँ । मैं दीक्षा धारण करना चाहता हूँ । ” गजकुमार की वाणी का खनकता सत्य , आँखों के बहते आँसुओं की पवित्रता एवं दृढ़ निश्चय देखकर भगवान ने उसे दीक्षा की अनुमति दी । पर , माँ-बाप की आज्ञा प्राप्त करने का आदेश भी दिया ।

“पिताजी माताजी मैं आपसे कुछ आदेश लेने आया हूँ । ” भगवान के प्रवचन से लौटने पर गजकुमार ने अपने मात-पिता से करबद्ध प्रार्थना की ।

“क्या बात है बेटे ? तुम्हारा चेहरा प्रतिदिन की भांति प्रफुल्लित क्यों नहीं ? क्या अस्वस्थ हो ? या किसी ने कुछ कह दिया है ? ” राजा ने जिज्ञासा से पूछा ।

“नहीं पिताजी ऐसा कुछ भी नहीं । इस छोटी सी जिन्दगी में मैंने बहुत से पापकर्म किए हैं । मैंने भोग को सर्वस्व मानकर जीवन ही नष्ट कर लिया है । मैं महापापी हूँ । इस पापकर्म से मुक्त होकर आत्मकल्याण के पथ पर आरूढ़ होना चाहता हूँ । कृपया मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दें । ” कहते-कहते गजकुमार ने अपने जीवन की सारी घटनायें सुनाई और रो पड़ा ।

“बेटा इसमें तुम्हारा क्या दोष ? यह तो इस उम्र में होता ही है । फिर

जब तुमने पश्चाताप कर लिया तो फिर पाप कैसा ? ” पिताने समझाया ।

“हाँ बेटा तुम्हारे पिताजी ठीक कह रहे हैं । अभी तुम्हारी उम्र भी क्या है ? हम शीघ्र तुम्हारा ब्याह रचाने का विचार कर रहे हैं । ” माँ ने गजकुमार को वात्सल्य से समझाया ।

“नहीं माँ अब ब्याह की बात ही न सोचें । मैंने छोटी सी उम्र में जो पाप किए हैं उनका जन्म जन्मान्तर में धुलना कठिन है । वही उम्र तपस्या की सही उम्र है । फिर भगवान नेमीनाथ को ही देखें । चौवन में ही वे केवली हो गये हैं । बस अब आप मुझे मोह के बंधन में न बांधें । ” हाथ जोड़कर गजकुमार ने प्रार्थना की ।

“ बेटा तप की उम्र तो मेरी है । तुम यह राज्य सम्हालो, योग्य समय पर गृह त्याग करना । ”

“पिताजी अब यह संभव नहीं । ” कहते-कहते गजकुमार ने पिता के चरण पकड़ लिए ।

राजा वासुदेव ने पुत्र को उठाकर छाती से लगाया । माँ ने मस्तकपर दुलार से हाथ फेरा और मौन स्वीकृति ही दे सकी । गला और आँखें दोनों भर गये थे ।

गजकुमार दीक्षा ले रहे हैं – यह समाचार पूरे राज्य में द्रुतगति से फैल गया । जिसने भी सुना आश्चर्य में डूब गया । गजकुमार के मित्र तो इसे मजाक समझ कर हँसी उड़ाने लगे ।

“ देखा सौ चूहे खाकर बिल्ली तीर्थ करने निकली है । ”

“लगता है कि लड़कियाँ फँसाने का नया मार्ग ढूँढ़ रहा है । ” मित्रों ने अपने ढंग से सोचा । वे सभी चापलूस, कामी मित्र शीघ्र गजकुमार के पास आये ।

पर यह क्या गजकुमार को देखते ही उनका भाव ही बदलने लगा ! गजकुमार के चेहरे की गंभीरता, आँखों की करुणा, व्यवहार की नम्रता ने उनके मुख ही बंद कर दिए । वे तो सोचकर आये थे कि उसकी खिंचाई करेंगे । पर, यहाँ तो उनके बोल ही रूक गये ।

“बेटा तुम्हीं अपने मित्र को समझाओ । इसे क्या हो गया है । इस कच्ची उम्र में दीक्षा लेने की जिद्द कर रहा है । हम तो इसका विवाह करके पुत्रवधु और पौत्रों का सुख देखना चाहते हैं । ” माँ ने गजकुमार के मित्रों से अपनी व्यथा कह

कर समझाने का आग्रह किया ।

मित्रों ने एकांत में गजकुमार को समझाने का प्रयत्न किया । पुराने किस्से सुनाने चाहे । भौड़े मजाक भी करने का प्रयत्न किया । पर, सब बेकार! जो गजकुमार इन बातों को रस पूर्वक सुनता था -रसिक बातें करता था । आज उसने ये बातें सुनने से भी इन्कार कर दिया । उल्टे उन मित्रों को समझाया -

‘मित्रों हम लोग आज तक अंधकार में थे । भोग-विसाल और वासनाओं की तृप्ति के नाम पर हमने व्यभिचारियों की जिन्दगी बिताई है । पर ये वासनाएँ कभी तृप्त नहीं हुई, और भी भड़कती रहीं । हमने कितनी मासूम, मजबूर , नारियों के सतीत्व को नष्ट कर अपने चरित्र को नष्ट किया है । यह पाप हमें एक नहीं -भव -भवान्तर तक दुर्गति में दुखी करेगा । मित्रों ! अभी देर नहीं हुई । जागे तभी से सबेरा समझो । नादानी में जो हो गया उस पर पश्चाताप करो । अपने भव को सुधारने के लिए आत्मचिन्तन करो । ब्रह्मचर्य की शरण लो । इस आत्मा को ब्रह्ममय बनाओ । ’

गजकुमार की बातें मित्रों के हृदय में हलचल मचा रही थीं । एक नया सूर्य उनकी कलुषित आत्मा को आलोकित कर रहा था । वे सभी सत्य को जान रहे थे और सबके आश्चर्य के बीच उन सभी मित्रों ने भी मानों एक स्वर में कहा -“गजकुमार यदि हम तुम्हारे साथ पाप में भागीदार थे तो अब मुक्तिपथ में भी तुम्हारे हम साथी बनेंगे । हम सब इसी समय तुम्हारे समक्ष ब्रह्मचर्यव्रत धारण करते हैं । तुम्हारे साथ ही हम भी जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण के पथ पर चलेंगे । ”

युवराज गजकुमार एवं सभी मित्र अपने परिवार से आज्ञा लेकर उसी उद्यान में पहुँचे जहाँ प्रभु नेमीनाथ ससंघ विराजमान थे ।



उद्यान में जैसे पूरा राज्य ही उमड़ पड़ा था । लोग भक्ति कौतुक से भरे हुए थे । लोग देख रहे थे सुकुमार युवराज और उनके युवामित्रों को जो इस कोमलवय में ,भोग के सुख को छोड़कर कठिन तपस्या के पथानुगामी बन रहे थे । कोई इसलिए रो रहा था कि ये कोमल बच्चे इस दुर्गम पथ पर कैसे चलेंगे ? कुछ शंकित थे कि यह लड़के इस पथ पर चल भी पायेंगे । कुछ सराहना कर

रहे थे कि कैसा वैराग्य जन्मा है । अनेक मुँह , अनेक बातें हो रही थीं ।

गजकुमार निश्पृहता से आभूषण वस्त्र त्याग रहे थे । ज्यों—ज्यों वस्त्र उतर रहे थे , अन्तर का संसार भी छूटता जा रहा था । सौन्दर्य के प्रतीक , सुन्दरियों को लुभाने वाले बाल वे घास—फूस की तरह लोंच रहे थे । गजकुमार की इस दृढ़ता और निश्पृहता को देखकर लोग आँसू बहा रहे थे । जय—जयकार की ध्वनि के साथ वैराग्य की अनुमोदना कर रहे थे ।

अब सामने युवराज गजकुमार की जगह विराजमान थे , मुनि गजकुमार । मुनि गजकुमार कल का विलासी आज का वैरागी था । चंचल इन्द्रियाँ , संयम से बंध चुकी थीं । सोने—चाँदी के बर्तनों में खानेवाले हाथों को पात्र बनाकर वे रूखा—सूखा भोजन कर रहे थे । मखमल के विस्तर में सोनेवाला जमीन पर सो रहा था । जो पांव कभी मखमल से नीचे नहीं चले थे वे आज नंगे पैर ऊबड़ खाबड़ , पथरीली जमीन पर विहार कर रहे थे । पांव से खून बहने लगता पर इस तपस्वी को इसका ध्यान ही कब था ? देह ता ममत्व तो कब से ही छूट गया था ? समग्र चेतना आत्म केन्द्रित हो गई थी ।

मुनि गजकुमार , भगवान के साथ अनेक देशों , नगरों में विहार करते रहे । पश्चात अकेले अनेक नगरों में विहार करते हुए , लोगों को सच्चे 'जैनधर्म' का उपदेश देते हुए लोगों को सत्पथ पर लगाते हुए , गिरनार पर्वत के जंगलों में पहुँचे । मुनि गजकुमार ने वर्षों तपाराधना करके अपने कर्मों का क्षय किया । अपने दिव्यज्ञान से जब उन्होंने ज्ञात किया कि अब आयु के कुछ ही दिन बाकी हैं तो सल्लेखना धारण कर आत्मा में अधिकाधिक लीन होते गए । उन्होंने मृत्यु को भी उत्सव की भांति अपनाने का मानो संकल्प ही कर लिया । मुनि गजकुमार पूर्ण सन्यास धारण कर ध्यानस्त होकर तप में लीन हो गए । उन्हें तो देह का यह भी ध्यान नहीं रहा कि उस पर जीव जन्तु रेंग रहे हैं । जंगली पशु शरीर खुजला रहे हैं । गर्मी—सर्दी शरीर को प्रतिकूल बन रहे हैं । मुनि गजकुमार देह से देहातीत हो गए थे । उनका ध्यान आत्मामें सिमट कर प्रभामण्डल रच रहा था । शरीर क्षीण हो रहा था , पर आत्मा उज्ज्वल बनती जा रही थी ।

जब से पांसुल सेठ को यह ज्ञात हुआ कि उसकी पत्नी की इज्जत लूटने वाला दुष्ट युवराज गजकुमार दीक्षित हो गया तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ । वह तो सोचने लगा कि यह भी दुष्टता की ही कोई चाल होगी । वह जहाँ भी गजकुमार मुनिवेश में विहार करते उनके ही आसपास चलता रहता । उसके मन में निरन्तर बदले की आग धधकती रहती । सोते—जागते , उठते—बैठते खाते—

पीते हर समय वह यही सोचता कि कैसे गजकुमार से अपनी पत्नी के अपमान का बदला ले। यह आर्तध्यान दिनों दिन पनपकर भयानक वैरभाव के रूप में दृढ़ हो गया। उसकी समस्त चेतना इसी भावना में लगी रहने लगी। वह अनेक उपाय सोचता षड्यंत्र करता लेकिन साधुओं का संग और श्रावकों की निरन्तर उपस्थिति के कारण वह बदला लेने में सफल नहीं हो पाया। लेकिन उसने इरादा नहीं बदला।

“मैं जिन्दगी के अन्तिम क्षण तक, इस नंगे लुच्चे गजकुमार से बदला लेकर रहूँगा। यदि इस जन्म में सफल नहीं हुआ तो अगले जन्म में या भव-भवान्तरों में बदला लेकर रहूँगा।” ऐसे ही विचार वह सदैव करता रहता।

जब मुनि गजकुमार रिगनार के जंगल में घोर तपस्या में लीन थे, तब पांसुल सेठ भी उन्हें खोजता हुआ गिरनार के जंगलों में पहुँचा। पहली बार अपने दुश्मन को, पत्नी के साथ व्यभिचार करनेवाले गजकुमार को एकान्त में पाकर वह बहुत खुश हुआ। और बड़बड़ाने लगा -

“अब बचकर कहाँ जाओगे? आज मैं अपनी पत्नी पर किए गए अत्याचार का बदला लूँगा। तुम्हें ऐसा मजा चखाऊँगा कि मौत भी कांप उठेगी। मेरी जिन्दगी भर की ज्वाला आज शान्त होगी।”

पांसुल पागलों की तरह अट्टहास्य कर उठा। दूसरे ही क्षण उसकी आँखों में खून उतर आया। क्रोध और क्रूरता चेहरे पर नाचने लगी। पांसुल ने अपने बदले के रूप में बड़े-बड़े लोहे के कीले गजकुमार के हाथों, पांवाँ में निर्दयता से ठोकने शुरू कर दिए। पांसुल एक-एक कीला ठोकता, दुष्टता से हँसता, बदले की सफलता के संतोष का अनुभव करता। खून की धारायें मुनि गजकुमार के अंग-अंग से बह निकली, पर वे तनिक भी विचलित न हुए। चेहरे पर भय, वेदना क्रोध की कोई छाया न आयी। सहनशक्ति के तप का तेज और बढ़ गया। देह में कीलें ठुक रहे थे। पर मुनि के हर ठोकर पर कर्म झर रहे थे। गजकुमार ने इसे उपसर्ग मानकर समता से सहन किया। देह क्षत-विक्षत हुई, पर आत्मा अष्टकर्म के बन्धन से मुक्त हो गई। पांसुल उन्हें मरा जानकर खुश होता हुआ चला गया, परन्तु पापकर्म के बोझ से इतना दब गया कि भव-भवों तक नरकादि के दुखों को भोगता रहा।

देह से मुक्त आत्म लक्ष्मी का वरणकर मोक्ष में स्थान पाने वाले गजकुमार जन्म मरण से मुक्त हो गए। तप की अग्नि में समस्त कर्म भस्म हो गए।

